दिसम्बर 2021

दादावाणी

Retail Price ₹ 15

आप शुद्धात्मा हो गए, इसलिए फिर
अनुकूल भी नहीं है और प्रतिकूल भी नहीं है।
यह तो, जब तक आरोपित भाव है,
तभी तक संसार है और तभी तक अनुकूल
और प्रतिकूल की दखल है।

पूज्य दीपक भाई की यू.के. - जर्मनी सत्संग यात्रा

लेस्टर (यू.के.) : सत्संग - ज्ञानविधि : ता. 14 से 19 अक्तूबर 2021

लंडन (यू.के.) : सत्संग - ज्ञानविधि : ता. 20 से 26 अक्तूबर 2021

जर्मनी : सत्संग - ज्ञानविधि : ता. 29 अक्तूबर से 1 नवम्बर 2021

वर्ष : 17 अंक : 2
अखंड क्रमांक : 194
दिसम्बर 2021
पृष्ठ - 28

Editor : Dimple Mehta
© 2021
Dada Bhagwan Foundation
All Rights Reserved.
Printed & Published by
Dimple Mehta on behalf of
Mahavideh Foundation
Simandhar City, Adalaj,
Dist.-Gandhinagar - 382421

Owned by
Mahavideh Foundation
Simandhar City, Adalaj,
Dist.-Gandhinagar - 382421

Printed at
Amba Offset
B-99, GIDC, Sector-25,
Gandhinagar – 382025.

Published at
Mahavideh Foundation
Simandhar City, Adalaj,
Dist.-Gandhinagar - 382421

संपर्क सूत्र :
त्रिमंदिर, सीमंधर सिटी,
अहमदाबाद-कलोल हाइ-वे,
पो.ओ.: **अडालज**,
जि.: गांधीनगर-382421.
फोन : 9328661166-77
email: dadavani@dadabhagwan.org
www.dadabhagwan.org
दादावाणी संबंधी शिकायत के लिए:
+91 8155007500

सबस्क्रिप्शन (सदस्यता शुल्क)
5 साल
भारत : 650 रुपये
यू.एस.ए. : 60 डॉलर
यू.के. : 45 पाउन्ड
वार्षिक
भारत : 150 रुपये
यू.एस.ए. : 15 डॉलर
यू.के. : 10 पाउन्ड
भारत में D.D./M.O.
'महाविदेह फाउन्डेशन' के नाम से
संपर्कसूत्र के पते पर भेजें।

दादावाणी

अनुकूलता और प्रतिकूलता में समानता

संपादकीय

अक्रम विज्ञानी परम पूज्य दादा भगवान ने इस कलियुग में अत्यंत सरल और सादी शैली में मोक्षमार्ग खुला किया है। जीवन के सभी प्रसंगों में होने वाली उलझन के समाधान दिए हैं, ताकि राग-द्वेष न हों, नए कर्म बंधन न हों और आए हुए कर्मों का समभाव से *निकाल* हो जाए। उनकी वाणी हृदय में समाते ही कोई भी संयोग या व्यक्ति को बदले बिना ही व्यवहार में प्रत्येक उलझन का अंत आ जाता है और अंदर मुक्ति का अनुभव होता है।

हम सभी महात्मा जीवन के प्रत्येक संयोग के सामने, पाँच आज्ञा की जागृति से, रियल-रिलेटिव के पुरुषार्थ से अलग रखने का प्रयत्न करते हैं लेकिन जब इस प्रकृति के सामने अनुकूल या प्रतिकूल संयोग आते हैं तब भीतर अहंकार और बुद्धि उछल-कूद मचा देते हैं। प्रतिकूलता में चिढ़ जाते हैं और अनुकूलता में खिंच जाते हैं, यही अजागृति कहलाती है। अनुकूलता में मस्ती में आ जाते हैं क्योंकि उसमें लोभ, कपट यानी कि राग कषाय खड़े होते हैं जबकि प्रतिकूलता में परेशान हो जाते हैं, जिससे क्रोध, मान यानी कि द्वेष कषाय खड़े होते हैं।

परम पूज्य दादाश्री प्रतिकूलता का हमेशा स्वागत करते थे और अनुकूलता में हमेशा सतर्क रहते थे। अनुकूलता आती तब भी प्रतिकूल कर देते थे। क्योंकि प्रतिकूलता में आत्मा की जागृति बढ़ती है। जब प्रतिकूल हो तब बाह्य भाग एब्सेन्ट (अनुपस्थित) रहता है और आत्मा प्रेज़न्ट (उपस्थित) रहता है। अनुकूल में बाह्य भाग प्रेज़न्ट रहता है। यानी आत्मा होना हो तो प्रतिकूलता हितकारी है। जब प्रतिकूलता आती तब दादा प्लस-माइनस का एडजस्टमेन्ट ले लेते थे। इस प्रकार प्रतिकूलता को अनुकूलता कर देते थे। वे हमेशा कहते थे कि, 'ये जो भूलें करवाती हैं और जो अजाग्रत कर देती है, वह अनुकूलता ही करवाती है।' अत: जिसे मोक्ष में जाना है, उसे ऐसी समझ रखनी चाहिए कि, 'प्रतिकूलता वह अनुकूलता ही है।' संसार जिसे प्रतिकूल कहता है, उसे हम अनुकूल कहते हैं। अनुकूलता और प्रतिकूलता में समानता आ जाए तो कोई परिस्थिति दु:खदायी रहेगी ही नहीं। जहाँ अच्छा नहीं लगता वहाँ ही एडजस्टमेन्ट हो तो वीतराग रह पाएँगे।

प्रस्तुत अंक में, रोज़मर्रा के जीवन में जो भी अनुकूल या प्रतिकूल संयोग आएँ, उनके सामने आत्मा की जागृति किस तरह से रखें, उसके बारे में अनुभव की प्रैक्टिकल चाबियाँ मिलती हैं। उन चाबियों का उपयोग करके, हम सभी महात्मा दृढ़ निश्चयपूर्वक अनुकूल और प्रतिकूल दोनों प्रकार के संयोगों में समानता रखकर और आए हुए प्रतिकूल संयोगों में समतापूर्वक तप करके, आत्मजागृति बढ़ाने का पुरुषार्थ करें, ऐसी हृदयपूर्वक अभ्यर्थना।

- जय सच्चिदानंद

अनुकूलता और प्रतिकूलता में समानता

'दादावाणी' सामायिक में मुद्रित पाठ्य सामग्री मूलत: गुजराती 'दादावाणी' का हिन्दी रूपांतर है। कोष्ठक में दिए गए शब्द या तो अंग्रेज़ी शब्द का अर्थ हैं अथवा शब्द का तात्पर्य स्पष्ट करने हेतु वृद्धित किए गए वाक्यांश है। यहाँ पर 'आत्मा' शब्द को गुजराती और संस्कृत की तरह पुल्लिंग में प्रयोग किया गया है। जहाँ पर भी 'चंदूभाई' नाम का प्रयोग हुआ है, वहाँ पर पाठक खुद को समझें। 'दादावाणी' के इस अंक में अगर आप कोई बात न समझ पाएँ तो प्रत्यक्ष सत्संग में पधारकर समाधान प्राप्त करें। अनुवाद में कोई कमी नज़र आए तो हमें सूचित करने की कृपा करें, ताकि भविष्य में सुधार किया जा सकें। ऐसी क्षतियों के लिए हम आपके क्षमाप्रार्थी है।

संसार में आसक्ति की वजह से लगती है प्रतिकूलता

प्रश्नकर्ता : अंतर की इच्छा हो, फिर भी आत्मविकास के कार्य में अधिक प्रतिकूलता क्यों महसूस होती है?

दादाश्री : आत्मविकास के कार्य में प्रतिकूलता कभी भी होती ही नहीं। सिर्फ, उसकी अंतर की इच्छा ही नहीं होती। यदि अंतर की इच्छा हो न, तो आत्मविकास के कार्य में प्रतिकूलता होती ही नहीं। यह तो 'उसे' इस दुनिया पर अधिक भाव है और आसक्ति है, इसलिए इसमें प्रतिकूलता लगती है। बाकी आत्मा प्राप्त करना तो सहज है, सरल है, सुगम है। आत्मा को खुद के गाँव जाने में देर ही कितनी लगेगी?

मैंने किसान से पूछा था कि, 'इस बैल को यहाँ से खेत में ले जाते समय बैल का स्वभाव कैसा रहता है?' तब उसने कहा, 'हम खेत में ले जाते हैं, उस घड़ी धीरे-धीरे चलता है।' 'और वापस घर आते समय?' तब कहता है, 'घर? वह तो समझ जाता है कि घर ही जा रहे हैं, इसलिए तेज़ी से चलता है!' उसी प्रकार जब से आत्मा ने ऐसा जाना कि मोक्ष में जाना है, तब से तेज़ी से चलने लगता है। खुद के घर जाना है न! और बाकी सभी जगह तो धीरे-धीरे, जबरन चलता है।

सही समझ से छुटकारा

प्रश्नकर्ता : यह सब ठीक है, परंतु अभी संसार में देखें तो दस में से नौ लोगों को दु:ख हैं।

दादाश्री : दस में से नौ नहीं, हज़ार में से दो लोग सुखी होंगे, थोड़ी बहुत शांति में होंगे। बाकी सब रात-दिन जलते ही रहते हैं।

शक्करकंद भट्ठी में रखे हों, तो कितनी तरफ से सिकते हैं? चारों तरफ से, उसी प्रकार यह पूरा जगत् सिक रहा है। अरे! पेट्रोल की अग्नि से जलता हुआ हमें अपने ज्ञान में दिख रहा है।

झंझट चलती ही रहती है, उसी को संसार कहते हैं। संसार यानी राग-द्वेष वाला कलह। कुछ पल में राग और कुछ पल में द्वेष। हमने इस संसार की बहुत सूक्ष्म खोज की है। अंतिम प्रकार की खोज करके हम ये सब बातें कर रहे हैं। व्यवहार में किस तरह रहना चाहिए, वह भी देते हैं और मोक्ष में किस तरह जा सकते हैं, वह भी देते हैं। आपको अड़चनें किस तरह से कम हों, वही हमारा हेतु है।

भगवान इतना ही कहते हैं कि, 'व्यवहार में किसी के लिए बाधारूप न बन जाएँ, उतना व्यवहार संभाल लेना।' कोई कहे कि 'ठहरो' और आप शून्यवत् रहो तो क्या होगा?

ये सब बातें समझ लेनी हैं। ये इलेक्ट्रिक के सारे पोइन्ट्स सेट किए हुए होते हैं और आप हर एक पोइन्ट को समझ लो तो फिर परेशानी नहीं होगी। वर्ना, पंखे के बजाय लाइट जलने लगेगी और लाइट के बदले पंखा चलने लगेगा, ऐसा होता रहेगा।

'ज्ञानी पुरुष' जो समझ देते हैं, उस समझ से छुटकारा होता है। बिना समझ के क्या होगा? वीतराग धर्म ही सर्व दु:खों से मुक्ति देता है। व्यवहार की ऐसी बातें किसी ने बताई ही नहीं है। ऐसी बात समझ में आए बिना व्यवहार कभी सुधर ही नहीं सकता। यदि व्यवहार सुधर जाएगा तो आप मुक्त हो सकोगे, वर्ना मुक्त भी कैसे हो सकोगे? अशांति नहीं रहनी चाहिए, चिंता नहीं होनी चाहिए। संसार में सुख तो है ही नहीं। लेकिन भगवत् उपाय करोगे तो कुछ शांति लगेगी और ज्ञान के उपाय से सदा शांति रहेगी।

जीवन में पचाना है एक ही शब्द

प्रश्नकर्ता : मुख्य चीज़ यह कि घर में शांति रहनी चाहिए।

दादाश्री : लेकिन शांति कैसे रहे? लड़की का नाम शांति रखें, फिर भी शांति नहीं रहती। उसके लिए तो धर्म समझना चाहिए। घर के सभी सदस्यों से कहना चाहिए कि, 'हम घर के सभी सदस्य कोई आपस में किसी के बैरी नहीं हैं, किसी का किसी से झगड़ा नहीं है। हमें मतभेद करने की कोई ज़रूरत नहीं हैं। आपस में मिल-बाँटकर शांतिपूर्वक खाओ-पीओ। आनंद करो, मौज करो।' इस प्रकार हमें सोच-समझकर सब करना चाहिए। घर वालों के साथ क्लेश कभी नहीं करना चाहिए। उसी घर में पड़े रहना है फिर क्लेश किस काम का?

'एडजस्ट एवरीव्हेर' इतना ही शब्द यदि आप जीवन में उतार लोगे तो बहुत हो गया! आपको अपने आप शांति प्राप्त होगी। शुरुआत में छ: महीने तक अड़चनें आएँगी, बाद में अपने आप ही शांति हो जाएगी। पहले, छ: महीने तक पिछले रिएक्शन आएँगे, देर से शुरुआत करने की वजह से। इसलिए 'एडजस्ट एवरीव्हेर'! इस कलियुग के ऐसे भयंकर काल में यदि एडजस्ट नहीं हुए न, तो खत्म हो जाओगे!

हिसाब तो भुगतने पर ही छुटकारा

प्रश्नकर्ता : मैं वाइफ के साथ एडजस्ट होने की बहुत कोशिश करता हूँ लेकिन नहीं हो पाता।

दादाश्री : यह सब हिसाब के अनुसार है! टेढ़ा बोल्ट और टेढ़ा नट, वहाँ नट को सीधा घुमाने से कैसे चलेगा? आपको ऐसा होता होगा कि 'यह स्त्री जाति ऐसी क्यों है?' लेकिन स्त्री जाति तो आपका 'काउन्टर वेट' है। जितना आपका दोष, उतनी वह टेढ़ी। इसीलिए तो हमने ऐसा कहा है न, कि सब 'व्यवस्थित' है!

प्रश्नकर्ता : सभी हमें सीधा करने आए हैं, ऐसा लगता है।

दादाश्री : आपको सीधा तो करना ही चाहिए। सीधे हुए बगैर दुनिया चलती नहीं न! अगर सीधा नहीं होगा तो फिर बाप कैसे बनेगा? जब सीधा होगा तभी बाप बनेगा। स्त्री जाति कुछ ऐसी है कि वह नहीं बदलेगी इसलिए हमें बदलना होगा। वह सहज जाति है, वह ऐसी नहीं है कि बदल जाए।

प्रश्नकर्ता : दादा! मैं सत्संग में आता हूँ, तो वह घर वालों को पसंद नहीं है। बाकी मैं उनके साथ कभी भी उल्टा व्यवहार नहीं करता, इसके बावजूद भी वे खुश क्यों नहीं होते?

दादाश्री : जब तक तुझे हिसाब भुगतना बाकी है, तब तक वे खुश कैसे होंगे?

प्रश्नकर्ता : खुश नहीं हों तब भी हर्ज नहीं है लेकिन अगर नॉर्मल रहेंगे तो भी मुझे अच्छा लगेगा।

दादाश्री : नॉर्मल रहेंगे ही नहीं। नॉर्मल न

रहें फिर भी आपको ऐसा ही मानना है कि, 'खुश ही हैं'। उन्हें आप पसंद नहीं हो। 'अपने जो आचार-विचार हैं, वे उन्हें पसंद नहीं हैं', ऐसा जानने के बावजूद भी आपको उनके साथ बैठ कर खाना पड़ता है, रहना पड़ता है, सोना पड़ता है, सहमत होना पड़ता है। क्या हो सकता है, चारा ही नहीं है न! वे कर्म भुगतने ही पड़ेंगे। जिस काल में, जिस क्षेत्र में, जो द्रव्य-भाव, सबकुछ साथ में मिलकर जो भुगतना है, उसमें तो किसी की चलेगी ही नहीं।

'नापसंद' में होती है प्रगति

प्रश्नकर्ता : जो परस्पर विरोधी परमाणु वाले होते हैं, वे पति-पत्नी के रूप में आते हैं क्या?

दादाश्री : नहीं, वे भी आते हैं और ये सब तो तरह-तरह के आते हैं। हर किसी के लिए, वे एक ही तरह के नहीं होते, तरह-तरह के होते हैं।

प्रश्नकर्ता : जो अनुकूल होते हैं, वे भी आते हैं?

दादाश्री : अनुकूल तो इतना अधिक अनुकूल, कि खुद प्रतिकूल हो जाए तब भी पत्नी अनुकूल रहती है। खुद टेढ़ा हो, लेकिन पत्नी हमेशा सीधी रहती है, इतनी अच्छी स्त्री होती है। कई जगह पर पुरुष बिल्कुल सीधा होता है तो वहाँ स्त्री हमेशा टेढ़ी होती है। सभी तरह का माल है यहाँ पर। यहाँ किसी तरह का नहीं है, ऐसा नहीं है। हर तरह का माल है।

प्रश्नकर्ता : ये विरोधी परमाणु वाले परस्पर मिलते हैं, तो वह किसलिए?

दादाश्री : जाग्रत करने के लिए, वर्ना तो सो जाएगा। दोनों ही सो जाएँगे। छः-छः महीनों तक सोते रहेंगे। बाहर सूर्यनारायण को देखने भी नहीं आएँगे। वर्ना सब पड़े ही रहें ऐसे हैं। ये तो एकदम विरोधी हैं न, इसीलिए तो मज़ा है इसका। वर्ना कोई मोक्ष में जाता ही नहीं न!

प्रश्नकर्ता : कई बार पत्नी इतनी प्रतिकूल होती है, तो ''बैरभाव से वैकुंठ'' जैसा हो जाता है। ऐसा बहुतों के साथ हो चुका है।

दादाश्री : इस संसार में हर एक चीज़ खुद की पसंद की आ जाए न, तो इंसान प्रगति नहीं कर सकता। उसकी आध्यात्मिक प्रगति रुक जाती है। इसलिए एक-दो कोने ऐसे होने चाहिए, कि जो उसे जाग्रत रखें।

समभाव से निकाल द्वारा होंगे शांत तूफान

प्रश्नकर्ता : दादा, अभी तो आँधी जैसा आया है।

दादाश्री : आँधियाँ आएँगी, फिर जब आँधी चली जाएगी, उसके बाद सेफसाइड। मतलब आँधी सब को आती है। ये तो बीच में ज़रा आँधी आए तो दरवाज़े बंद करके बैठे रहना। लेकिन दो घंटे के बाद आँधी बंद होने पर, फिर दरवाज़े खोल देते हैं। इसी तरह आपके यहाँ आँधी आए, तो एक दिन-दो दिन तो आप दरवाज़े बंद करके अंदर होम डिपार्टमेन्ट (आत्मस्वरूप) में बैठे रहना। और बाहर चंचलता होती रहेगी, उसे देखते रहना। क्या ऐसा नहीं हो सकता?

प्रश्नकर्ता : यानी हमें धीरज रखनी है, समता रखनी है।

दादाश्री : बस, और क्या? जो आँधी आई है, उसे हमें देखते रहना है और समभाव से *निकाल* (निपटारा) करना है और उसे फाइल कहा जाता है। समभाव से *निकाल* करना तो फिर चला जाएगा। जितना हिसाब में है, उतना ही आएगा, दूसरा नहीं आएगा। यह क्या कोई गप्प है यहाँ पर? यह तो वैज्ञानिक है।

सही समझ समभाव से निकाल की

प्रश्नकर्ता : यह समभाव से *निकाल* नहीं हो पाता।

दादाश्री : नहीं होता? तो क्या हो जाता है?

प्रश्नकर्ता : अब मेरा ऐसा है कि फाइल नं-2 मुझसे एकदम विरुद्ध है। इसलिए उसके साथ मेरा संघर्ष होता है और समभाव से *निकाल* नहीं हो पाता।

दादाश्री : लेकिन आपको तो चंदूभाई से कहना है कि, 'समभाव से *निकाल* करो न।' फिर भी अगर बहुत *चीकणा* होगा, निकाचित होगा तो देर लगेगी।

प्रश्नकर्ता : औरों के साथ हो तो सहज रूप से हो जाता है लेकिन यहाँ पर नहीं हो पाता।

दादाश्री : संभाल-संभालकर करो न अब। यह जैसे पट्टी उखाड़ते हैं न, जलन नहीं हो उस तरह धीरे से।

प्रश्नकर्ता : हमारे तो फाइल के साथ वैचारिक मतभेद बढ़ते जा रहे हैं।

दादाश्री : लेकिन मतभेद क्यों बढ़ने चाहिए? आपको समभाव से *निकाल* करने की आज्ञा का पालन करना चाहिए न?

प्रश्नकर्ता : लेकिन समभाव से *निकाल* करने की आज्ञा का पालन करने के बावजूद भी यही स्थिति रहा करती है।

दादाश्री : नहीं, ऐसा कुछ नहीं है। *'समभाव से निकाल'*, उस आज्ञा का पालन करोगे, तो कुछ भी खड़ा नहीं रहेगा। उस वाक्य में इतना अधिक वचनबल है कि बात न पूछो!

प्रश्नकर्ता : लेकिन समभाव से *निकाल* करने में एकपक्षीय विचारणा ही हुई न?

दादाश्री : एकपक्षीय नहीं बोलना है। आपको तो, समभाव से *निकाल* करना है, इतना ही तय करना है। फिर वह अपने आप ही होता रहेगा। नहीं हो पाए फिर भी प्याज़ की एक परत तो निकल ही जाएगी। फिर प्याज़ की दूसरी परत दिखेगी। यानी दूसरी बार में दूसरी परत निकलेगी, ऐसा करते-करते प्याज़ खत्म हो जाएगी। यह तो विज्ञान है! यह तुरंत ही फलदायी है, एक्ज़ेक्टनेस है। ये चंदूभाई क्या करते हैं, वह आपको देखते रहना है। सामने वाले व्यक्ति में शुद्धात्मा देखना है और फाइल के तौर पर समभाव से *निकाल* करना है।

प्रश्नकर्ता : हाँ, लेकिन समभाव से *निकाल* करने में हमें व्यवहारिक मुश्किल आए तो...

दादाश्री : व्यवहारिक मुश्किलें तो आएँगी और जाएँगी। एब एन्ड टाइड (ज्वार-भाटा), पानी बढ़ता है और घटता है, समुद्र में रोज़ दोनों समय बढ़ता-घटता रहता है।

प्रश्नकर्ता : हमारे मतभेद उस कक्षा के हैं कि साथ रह ही नहीं सकते।

दादाश्री : फिर भी समभाव से *निकाल* करके लोग इतनी अच्छी तरह से रह पाए हैं न! और अलग होकर भी क्या फायदा होगा?

प्रश्नकर्ता : उसकी समझने की तैयारी ही नहीं होती। किसी भी सगे-संबंधी के साथ जमता ही नहीं है, किसी के साथ व्यवहार ही नहीं रखना हो, उस तरह उसे रहना अच्छा लगता हो तो क्या करना चाहिए?

दादाश्री : कोई तरीका नहीं रखना है। यह देखना है कि किस तरह रहा जाता है। डिज़ाइन का रास्ता नहीं है यह। यह ज्ञान डिज़ाइन वाला नहीं है। किस तरह रहा जाता है, वह देखना है।

प्रश्नकर्ता : चाहे वह तरीका व्यवहारिक तौर पर योग्य हो या अयोग्य?

दादाश्री : वह आपको नहीं देखना है। आपको तो इस तरह से रहना है। शांति चाहिए, आनंद चाहिए तो इस तरह से रहो। वर्ना आप फिर वह वाला (व्यवहारिक) तरीका अपनाओ। डिज़ाइन बनाओगे तो मार खाओगे। और कुछ नया मिलने वाला नहीं है। अज्ञानता की निशानी यह है कि मार खाता है, और कुछ नहीं। इसे ओवरवाइज़ (डेढ़ सयानापन) कहते हैं। ऊपर से अपनी अक्ल लड़ाने जाता है। तत्त्वदृष्टि मिलने के बाद कुछ और क्यों देखना है? (तत्त्वदृष्टि) नहीं मिली होती तो बाकी सब था ही न!

प्रश्नकर्ता : लेकिन क्या फिर इसे कर्म बंधन मानकर सहन करते रहना है? इस परिस्थिति को?

दादाश्री : कुछ भी नहीं मानना है। आपको मानना कैसा? आप 'ज्ञाता-द्रष्टा', देखना ही है। क्या होता है, उसे देखना है। वॉट हैपन्स!

एक ही जन्म अगर ज्ञानी की आज्ञा के अनुसार चले तो मौज हो जाएगी। और वह खुद के सुख सहित रहेगी।

जहाँ डिसएडजस्टमेन्ट वहीं पर समभाव विकसित करो

प्रश्नकर्ता : किसी भी संयोग में समभाव से *निकाल* ही करना है?

दादाश्री : समभाव से *निकाल* करना, बस उतना ही अपना धर्म है। कोई फाइल ऐसी आ गई, तो आपको तय करना है कि समभाव से *निकाल* करना है। अन्य फाइलें तो एडजस्टमेन्ट वाली होती हैं, उनके लिए तो बहुत ज़रूरत नहीं पड़ती।

प्रश्नकर्ता : लेकिन जहाँ टोटल डिसएडजस्टमेन्ट हो, वहाँ फिर क्या करना चाहिए?

दादाश्री : समभाव से *निकाल* करने का भाव आपको मन में तय करना है। 'समभाव से *निकाल* करना है' उतने ही शब्द का उपयोग करना है।

प्रश्नकर्ता : सामने वाला कोई एडजस्टमेन्ट नहीं करे तो क्या करना चाहिए?

दादाश्री : वह नहीं करे तो हमें वह नहीं देखना है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन फिर हमें क्या करना चाहिए? हमें अलग हो जाना चाहिए?

दादाश्री : आपको देखते रहना है। और कुछ तो उसके या आपके ताबे में नहीं है। अर्थात् जो भी हो, उसे आप देखो। अलग हो जाए तो भी हर्ज नहीं है। अपना ज्ञान ऐसा नहीं कहता कि आप अलग मत होना या अलग हो जाओ ऐसा भी नहीं कहता। क्या होता है, उसे देखते रहना है। अलग हो गए तो भी कोई विरोध नहीं करेगा, कि क्यों आप अलग हो गए और साथ रहोगे तो भी कोई हर्ज नहीं। लेकिन यह डिसएडजस्टमेन्ट गलत चीज़ है।

तैयारी होने पर ही करो खुलासे

प्रश्नकर्ता : तो अब, ज्ञान के एडजस्टमेन्ट के प्रयत्न होने के बावजूद भी समाधान नहीं हो पा रहा था और व्यवहारिक खुलासे से तुरंत समाधान हो गया। तो ऐसे में पूछना यही था कि, 'दोनों में जो अनबन होती है', वहाँ समाधान के लिए व्यवहारिक खुलासे की ज़रूरत है क्या? यदि समाधान होता हो तो?

दादाश्री : हाँ! यदि इस तरह व्यवहारिक खुलासे से समाधान होता हो तो उसके जैसा और कुछ भी नहीं है न! लेकिन होता हो अर्थात् क्या है कि दस बार 'माँ-बाप' कहो तो हम कहें कि ''भाई, बीस बार 'माँ-बाप' कहा चलो!'' सामने वाले के समाधान के लिए आपको वह करना ही

चाहिए। यानी कि यदि वह समाधान करने आए तब तो आपको उसे ज़्यादा खुश करना चाहिए। लेकिन वह समाधान करे ही नहीं और बल्कि तुझे डाँटे, कि 'मेरी कहाँ लड़ाई हुई है कि तू यों व्यर्थ ही समाधान-समाधान कर रहा है। पागल हो गया है क्या? दादा ने उल्टा सिखाया है?' कहेगा।

अर्थात् समाधान तो कब किया जा सकता है कि जब उनकी तैयारी हो। उनके मन में ऐसा हो कि 'यह कुछ अच्छा बोले तो इस बात का निबेड़ा आ जाएगा'। उस समय आपको बोलना चाहिए और वहाँ अच्छा बोलने से निबेड़ा आ जाता है। जहाँ उलझन हो गई हो न, वहाँ पर आप अच्छा बोलोगे, मीठा-मीठा बोलोगे तो निबेड़ा आ जाएगा। और वह ध्यान में रखना चाहिए कि किस वजह से गाँठ पड़ गई थी। फिर कहना चाहिए कि, 'इस तरफ के दिमाग़ में थोड़ी बीमारी है। कभी ऐसा उल्टा निकल जाता है', कहना। तो फिर वह दोष के लिए झंझट नहीं करेंगे।

समभाव से निकाल होने पर ठीक हो जाएगा

प्रश्नकर्ता : यदि स्वभाव ही विरोधी हो तो फिर वह चेन्ज किस तरह हो सकता है?

दादाश्री : संसार का नाम ही विरोधी स्वभाव है। संसार का अर्थ ही है, विरोधी स्वभाव। और उस विरोधी का *निकाल* नहीं करेंगे तो विरोध तो रोज़ ही आएगा और अगले जन्म में भी आएगा! उसके बजाय यहीं पर हिसाब चुका दो, उसमें क्या बुरा है? आत्मा प्राप्त होने के बाद हिसाब चुका सकते हैं।

'आज्ञा का पालन करना है' इतना बोलना है बस। अन्य एडजस्टमेन्ट तो किसके हाथ में है? व्यवस्थित के हाथ में हैं।

आप समभाव से *निकाल* करना तय करोगे, तो आपका सब ठीक हो जाएगा। इस शब्द में जादू है। वह अपने आप ही सारा निबेड़ा ला देगा।

प्रश्नकर्ता : समभाव से *निकाल* करना, यानी सामने वाला व्यक्ति जो कुछ भी कहे, उसकी हाँ में हाँ मिलाएँ?

दादाश्री : वह कहे कि 'यहाँ बैठिए' तो बैठना। वह कहे 'बाहर निकल जाइए' तो बाहर चले जाना। वह व्यक्ति कुछ भी नहीं करती। यह तो, व्यवस्थित करता है। वह तो बेचारी निमित्त है। बाकी, 'हाँ में हाँ' नहीं मिलानी है, लेकिन चंदूभाई क्या, हाँ कहते हैं या ना कहते हैं, वह 'आपको' देखना है। और फिर 'हाँ में हाँ' मिलाना, ऐसी कोई सत्ता भी आपके हाथ में नहीं है। व्यवस्थित आपसे क्या करवाता है, वह देखना है। यह तो आसान बात है, उसे लोग उलझा देते हैं।

प्रश्नकर्ता : लेकिन उसे तो उसके तरीके से रहना है।

दादाश्री : आप कल्पनाएँ क्यों करते हो कि वह ऐसा करेंगी?

प्रश्नकर्ता : वह कर ही रही है। उसे अनुभव ही कर रहा हूँ।

दादाश्री : नहीं। अनुभव हो रहा हो तब भी आपको कल्पना नहीं करनी है। इस कल्पना से ही यह सब खड़ा हो गया है, गलत! बिल्कुल सीधा है और समभाव से *निकाल* करने की हमारी आज्ञा का पालन किया जाए न, तो एक बाल जितनी भी मुश्किल नहीं आएगी और वह भी.. सब साँपों के बीच भी! और वह तो, साँपिन नहीं है, वह तो स्त्री है न! और कुछ नहीं है, यह तो आपने ही यह सब गाढ़ किया है।

टेन्डर भरे, अपनी डिज़ाइन में

द वर्ल्ड इज़ योर ऑन प्रोजेक्शन (जगत्

आपकी ही योजना है)। उसमें किसी का दखल नहीं है। ज़रा भी दखल नहीं है। आपका प्रोजेक्शन और आपकी ही प्लानिंग।

प्रश्नकर्ता : मुझे यह समझ में नहीं आता, कि यह प्लानिंग मैंने कब की और क्यों की?

दादाश्री : प्लानिंग करते समय सिर्फ नक्शे ही चितरने होते हैं। नक्शे चितरे होते हैं और यहाँ योजना देखने पर घबराहट हो जाती है। ऐसा क्यों आया? कब किया था? खुद ने नक्शे चितरे थे, हाँ। फिर भी कहता है, 'ऐसा तो मैंने किया ही नहीं था!' यह परिणाम आ गया। परिणाम देखता है। परिणाम देखकर घबरा जाता है, कि यह परिणाम किसका है? यह तेरी योजना का ही परिणाम है।

प्रश्नकर्ता : आपने कहा कि, 'आपकी डिज़ाइन के अनुसार ही आपको यह सब मिला है।' तो वह 'डिज़ाइन' क्या है, उसके बारे में ज़रा समझाइए।

दादाश्री : 'डिज़ाइन' यानी कि आपकी बुद्धि के जो आशय हों न, कि 'मुझे ऐसा चाहिए, ऐसा चाहिए, ऐसा मुझे नहीं चाहिए।' जैसा चाहिए था न, वैसा सब टेन्डर लेकर आए हो। उसमें आपका सारा पुण्य खर्च हो जाता है।

एक भाई थे न, उन्होंने मुझसे पूछा, 'दादाजी, आप ऐसा क्या लेकर आए है कि, 'आपको सबकुछ आपकी इच्छा के अनुसार अनुकूल ही मिलता है? आप सत्संग कर सकते हैं, इच्छा अनुसार धर्म कर सकते हैं, इच्छा अनुसार सबकुछ कर सकते हैं।' तब फिर मैंने उन्हें समझाया कि बाकी सभी ने क्या भूल की है! मैंने कहा, देखो, टेन्डर भरते समय, 'मुझे ऐसी वाइफ चाहिए, दो बेटे चाहिए, बेटी चाहिए, बंगला चाहिए, गाड़ी चाहिए, सबकुछ लिखवाया और फिर जो 10-15 प्रतिशत बाकी रहे। तब आपने कहा कि, 'धर्म के खाते में लिख दो।' जबकि मैंने तो 5 प्रतिशत व्यवहार के लिए रहने दिए और 95 प्रतिशत धर्म में डाल दिए।

बच्चा जो भुगत रहा है, वह खुद के टेन्डर के अनुसार, खुद की डिज़ाइन के अनुसार ही भुगत रहा है। डिज़ाइन में ज़रा भी फर्क नहीं है और अभी वह दु:खी हो रहा है। यह खुद की ही डिज़ाइन है। ईश्वर इसमें हाथ डालता ही नहीं है। ईश्वर तो आपका स्वरूप है। वह आपका *ऊपरी* (बॉस) नहीं है। अभी आप जिस मकान में रहते हो न, वह मकान, आपकी जो पत्नी है, बच्चे हैं, वे सबकुछ आपकी डिज़ाइन के अनुसार ही हैं। इस शरीर का जो रंग-रूप, सभी हिसाब, ऊँचाई वगैरह सबकुछ आपकी ही डिज़ाइन है। उसने माँगा था कि, 'मुझे पत्नी तो चाहिए ही।' वह कैसे स्वभाव वाली? तब कहता है, 'ऐसा स्वभाव। ऐसा कुछ मिलता-जुलता हो।' रंग कैसा? तब यह कहता है, 'आधा काला, आधा गोरा।' यह सबकुछ तय किया था, उसी अनुसार ये पत्नी मिली हैं।

खुद की दी हुई परीक्षा के परिणाम

प्रश्नकर्ता : संयोग अनुकूल और प्रतिकूल क्यों होते हैं?

दादाश्री : वे अनुकूल और प्रतिकूल संयोग आपके परिणाम हैं। आपने कितने ही लोगों की हेल्प की हो, तो कुदरत उसके फल के रूप में आपके लिए संयोगों को अनुकूल कर देती हैं।

प्रश्नकर्ता : इस जन्म में या पिछले जन्म में?

दादाश्री : नहीं! पिछले जन्म का, इस जन्म का तो अभी जब आएगा, तब परिणाम। यानी कि ये परीक्षा देने में और रिज़ल्ट आने में कुछ एक-दो महीने का वह होता है समय (अवधि), कितना होता है?

प्रश्नकर्ता : हाँ, समय होता है।

दादाश्री : ये इसका समय सौ साल का होता है। यानी इसे इस अवधि में, वह परीक्षा और ये रिज़ल्ट, दोनों में समय रहता है।

यह रिज़ल्ट है। रिज़ल्ट में किसी का दोष निकाले, तो वह प्रोफेसर ही नहीं है। परीक्षा देते समय उसका दोष देखना है कि परीक्षा देते समय तुम्हें जागृति रखनी है! रिज़ल्ट में तुम्हारा दोष नहीं है। इस तरह सभी सामग्री, ऐसे अनुकूल संयोग लेकर आए होते हैं, पिछले जन्म में भावना की हो तो वे अनुकूल (संयोग) उत्पन्न हो जाते हैं।

प्रश्नकर्ता : अनुकूल निमित्त कब उत्पन्न होते हैं?

दादाश्री : अनुकूल तो, आपका दखल न हो न किसी प्रकार का, आपका एक ही भाव हो कि, 'मुझे सीधे ही सर्व दुःखों से मुक्त हो जाना है।' ऐसा जिसका भाव है, वह किसी के प्रति आपत्ति नहीं जताता। आपत्ति यानी क्या? खुद के अहंकार को मजबूत करने के लिए, खुद के अहंकार का दिखावा करने के लिए, खुद की कीर्ति के लिए, यश के लिए, अन्य प्रकार के लालचों के लिए, इन सभी में पड़ जाए तो मूल वस्तु की प्राप्ति नहीं कर पाता। मूल वस्तु के लिए तो एक ही ध्येय होना चाहिए, कि, 'कीर्ति हो या अपकीर्ति हो, जो भी होना हो वह हो लेकिन मेरी मूल वस्तु मिलनी चाहिए।' तो फिर उसे मूल वस्तु की प्राप्ति होती है। बाकी, अभी भी यदि कीर्ति का स्वाद लेना हो तो उसे वस्तु की प्राप्ति नहीं होगी।

तब तक अनुकूल और प्रतिकूल की दखल

प्रश्नकर्ता : हर किसी को अनुकूल संयोग ही चाहिए, ऐसा क्यों?

दादाश्री : अनुकूल अर्थात् सुख, जिसमें *शाता* (सुख-परिणाम) लगे, वह अनुकूल। *अशाता* (दुःख-परिणाम) लगे, वह प्रतिकूल। आत्मा का स्वभाव आनंद वाला है, इसलिए उसे प्रतिकूलता चाहिए ही नहीं न! इसलिए छोटे से छोटा जीव हो, उसे भी यदि अनुकूल नहीं आए तो खिसक जाता है!

इसलिए अंतिम बात यह समझ लेनी है कि प्रतिकूल और अनुकूल को एक कर दो। इसमें कुछ तथ्य नहीं है। इस रुपये के सिक्के में आगे रानी होती है और पीछे लिखा हुआ होता है, उसके जैसा है। उसी तरह इसमें कुछ भी नहीं है। अनुकूल और प्रतिकूल सब कल्पनाएँ ही हैं।

आप शुद्धात्मा हो गए, इसलिए फिर अनुकूल भी नहीं है और प्रतिकूल भी नहीं है। यह तो, जब तक आरोपित भाव है, तभी तक संसार है और तभी तक अनुकूल और प्रतिकूल की दखल है। अब तो जगत् को जो प्रतिकूल लगता है, वह हमें अनुकूल लगता है।

अनुकूल संयोग फूड हैं और प्रतिकूल, वे विटामिन हैं

प्रश्नकर्ता : प्रतिकूल संयोगों में स्थिरता रखना बहुत कठिन लगता है।

दादाश्री : नहीं! वह कठिन नहीं होता। खुद के सयानेपन का उपयोग न करे और यदि हमारे शब्द को फलदायी होने दे तो वह शब्द ही काम करे ऐसा है। खुद के सयानेपन का उपयोग न करे तो... कि, 'ऐसा हो जाएगा तो, ऐसा हो जाएगा तो।' अरे! कुछ भी नहीं होगा, आप ही मालिक हैं। वर्ल्ड के ऑनर ही आप हैं। कोई बाप भी नाम लेने वाला नहीं है। कौन है? आप ही *ऊपरी* हैं न।

यदि कभी अच्छे संयोग मिल जाएँ तो वे

हैं देह का विटामिन और खराब मिले तो आत्मा का विटामिन। अब, दोनों ही विटामिन हैं। यदि सभी चीज़ें अनुकूल मिलती हैं तो वे देह का विटामिन हैं, उससे शरीर अच्छा रहेगा। प्रतिकूल मिले तो आत्मा का विटामिन। यानी कि अनुकूल और प्रतिकूल, दोनों के अलावा तीसरी चीज़ नहीं मिलती। वे दोनों ही विटामिन हैं फिर हमें कहाँ नुकसान जाने वाला है? और लोग विटामिन लेने जाते हैं तो कुछ नहीं होता।

अनुकूल संयोग फूड (भोजन) हैं और प्रतिकूल संयोग विटामिन हैं। यह ज्ञान मिलने के बाद। इसलिए हम कहते हैं कि, 'विटामिन को व्यर्थ मत जाने देना।'

प्रश्नकर्ता : यह समझ में नहीं आया।

दादाश्री : जिसे ज्ञान नहीं मिला हो, उसके लिए तो कहा जाएगा कि प्रतिकूलता बहुत गलत है और जिसे ज्ञान मिला है, उसके लिए प्रतिकूलता विटामिन है। अनुकूल, वह फूड है। अत: फूड तो मिलता ही रहता है लेकिन प्रतिकूल, विटामिन चला न जाए, वह देखते रहना।

'प्रतिकूलता विटामिन हैं', ऐसा समझ लिया तो आत्मा का विटामिन उसे उत्पन्न हो गया।

प्रतिकूलता के विटामिन से प्रकट होता है आत्मवीर्य

प्रश्नकर्ता : दादा, प्रतिकूलता में आत्मा का विटामिन कहाँ से आता है? इंसान जब व्याकुल रहता है तब उसे भगवान कहाँ याद आते हैं?

दादाश्री : प्रतिकूलता में...? यह प्रतिकूलता तो आत्मा का विटामिन है। वह इंसान को जाग्रत रखता है, तभी आत्मा का काम होता है। जबकि अनुकूलता में तो सो जाएगा, दिन के उजाले में सो जाएगा।

प्रश्नकर्ता : प्रतिकूलता में तो इंसान आकुल-व्याकुल होता है न?

दादाश्री : आकुल-व्याकुल तो तब तक होता है जब तक उसने एडजस्टमेन्ट सेट नहीं किया हो। यदि आत्मा का एडजस्टमेन्ट सेट कर लिया जाए तो आकुल-व्याकुल रहेगा ही नहीं। क्योंकि आत्मा के विटामिन के लिए तो वह कब से इच्छा कर रहा था कि, 'मुझे आत्मा का विटामिन कब मिलेगा? आत्मवीर्य कब प्रकट होगा?' आत्मवीर्य तो आत्म विटामिन से प्रकट होता है। पूरे संसार के दु:ख बरस जाए फिर भी आत्म विटामिन के आगे वे कुछ भी नहीं हैं। आत्मवीर्य तो बहुत जबरदस्त चीज़ है!

प्रतिकूलता अर्थात् विरोधी। आपके फ्रेन्ड आपको मिठाई खिलाए और नाश्ता करवाए तो डोज़िंग हो जाती है। जबकि आत्मा के विटामिन में तो सामने से लड़ने आए तब जाग्रत हो जाते हैं।

'सरप्लस' की ही सारी चिंताएँ

प्रश्नकर्ता : लेकिन यदि इंसान चिंतित रहता हो तो वह आत्मा का कैसे कर सकता है?

दादाश्री : व्याकुल या चिंतित तो, जब बहुत पैसे आते हैं न, तभी व्याकुल रहता है। इन अहमदाबाद के मिल वाले सेठों की मैं आपको बात कहूँ न तो आपको ऐसा लगेगा कि 'हे भगवान! ऐसी दशा एक दिन के लिए भी मत देना'। सारा दिन, जैसे शकरकंद भट्ठी में रखा हो, उस तरह वह सिकता रहता है। सिर्फ, किस आधार पर जीते हैं? मैंने एक सेठ से पूछा, 'आप किस आधार पर जी रहे हैं?' तब कहते हैं, 'वह तो मुझे भी पता नहीं चलता'। तब मैंने कहा, 'बता दूँ? जब आपको ये सभी देखते हैं न, तब कहते हो कि, 'सबसे बड़ा तो मैं ही हूँ न!' बस, इस आधार पर जी रहा है। बाकी, कुछ भी सुख

नहीं मिलता। सेठानी को भी धोखा देता है। बीस हज़ार रुपये यात्रा के लिए चाहिए तो कहता है, 'अभी बैंक में कुछ भी नहीं है।' पाँच-पाँच साल तक टालता रहता है, ऐसे सेठ हैं। फिर मैं उनके सेक्रेटरी से मिला। मैंने पूछा, 'सेठ कहाँ गए हैं?' तब कहने लगा, साहब, मात्रा निकाल देना। मैंने कहा, 'ऐसा नहीं बोल सकते भाई।' भाई, तू उनका खाता है और ऐसा बोलता है, ऐसा कहा। जब तक उनका अनाज खाते हैं तब तक उनके लिए हम ऐसा नहीं बोल सकते।

प्रश्नकर्ता : आपने जो बात बताई, जिसे नहीं चाहिए और बहुत आता हो, उसके लिए यह बात हुई। लेकिन जिसे रोज का दो टाइम का भोजन न मिलता हो, उसे तो रोज़ की चिंता होगी न, कि कल उसका क्या करेंगे? अगले दिन क्या खाएँगे? इस प्रकार उन लोगों के लिए प्रतिकूलता तो है ही न? उन्हें प्रतिकूलता हो तो फिर ऐसा कैसे कह सकते हैं कि, 'यह आत्मा का विटामिन है?'

दादाश्री : नहीं, नहीं! ऐसा है न, सरप्लस की ही चिंता होती है, खाने की चिंता किसी को भी नहीं होती। इस कुदरत की व्यवस्था ही ऐसी है, कि सरप्लस की ही चिंता! वर्ना छोटे से छोटा पौधा कहीं भी उगा हो, वहाँ जाकर बादल पानी दे आते हैं। इतनी अधिक व्यवस्था है। ये रेग्युलेटर ऑफ द वर्ल्ड है, वह उसे रेग्युलेशन (नियम) में ही रखता है निरंतर। इस तरह यह गप्प वाला नहीं है, अत: सरप्लस की ही चिंता है, उसे खाने की चिंता नहीं है।

प्रश्नकर्ता : लगता है, आपको सभी ऐसे सरप्लस वाले ही मिले हैं! इसलिए ऐसा लगता है कि दूसरों को चिंता नहीं है। जिनके पास डेफिसिट (कमी) हो, लगता हो, ऐसे नहीं मिले हैं।

दादाश्री : नहीं! ऐसा नहीं है। डेफिसिट वालों से भी बहुत मिला हूँ। परंतु उन्हें बहुत चिंता नहीं होती।

पाँच लाख की ज़रूरत हो और पाँच करोड़ हाथ में आ जाए, उसकी क्या हालत होगी? डॉक्टर को बुलाना पड़ेगा। दिमाग में इतने अधिक विचार आते हैं, इतने अधिक विचार आते हैं फिर तो वह पागल हो जाता है। अत: यह सब जो है न, जितने भी पैसे दिए हैं, वे पद्धतिनुसार ही दिए गए हैं। इससे ज़्यादा हो जाए तो पागल हो जाएँगे। सबकुछ पद्धतिनुसार ही है। कोई देने वाला-लेने वाला नहीं है। आपका ही पुण्य है यह सारा। और ये जो पैसे नहीं आते, वह सब से अच्छा समय है! जब पैसें नहीं आएँ तब समझना कि यह उत्तम समय आया है! जोखिम नहीं न! किसी इन्कम टैक्स वाले का जोखिम नहीं, सेल टैक्स वाले का जोखिम नहीं, किसी भी प्रकार का जोखिम नहीं। और जब पैसे नहीं आते तब वह आत्मा का विटामिन होता है और पैसे आते हैं तब देह का विटामिन। ये दोनों विटामिन अलग हैं। आपको आत्मा का विटामिन चाहिए तो जब पैसे न आए तब वह आत्मा का विटामिन है। देह का विटामिन चाहिए तो जब पैसे आएँ तब। जो विटामिन चाहिए वह।

प्रतिकूलता की मित्रता, लाए शाता

प्रश्नकर्ता : परंतु जिसे *अशाता* ही आती रहती है, वह तो *शाता* योग को ही ढूँढेगा न?

दादाश्री : आत्मा का स्वभाव ही आनंद वाला है, इसलिए उसे *अशाता* तो चाहिए ही नहीं न! जीवमात्र को *अशाता* अनुकूल नहीं लगती इसलिए वह वहाँ से खिसक जाता है!

दो शब्द हैं, अनुकूल और प्रतिकूल। जिसकी प्रतिकूल से मित्रता हो गई उसे इस दुनिया में *शाता* ही है। प्रतिकूल से मित्रता हो गई तो फिर

कहते हैं कि दुनिया कभी भी आपको अच्छी-खराब नहीं दिखाई देगी। जैसी है (वैसी दिखेगी), वैसी की वैसी ही, सुंदर ही सुंदर दिखाई देगी। मित्रता सिर्फ प्रतिकूल से करनी है। और वह भी वास्तव में, एक्ज़ेक्ट, फेक्ट चीज़ नहीं है यह, कि भाई, इस एअर कंडिशन जैसी ठंडी हवा से हमें भीतर यह *शाता* रहती है और गरमी के कारण भीतर *अशाता* रहती है, ऐसा कोई कुदरत का नियम नहीं है। आप जिस ओर की प्रैक्टिस करोगे उससे आपको *शाता* रहेगी।

प्रश्नकर्ता : ठीक है।

दादाश्री : अत: आप प्रतिकूल को मित्रता संबंध मानो तो सबकुछ अनुकूल हो जाएगा। और अनुकूल को बेचारे को परेशान करना नहीं होता। क्या अनुकूल को परेशान करना पड़ता है?

प्रश्नकर्ता : नहीं, कोई परेशान नहीं करता।

दादाश्री : यह तो एक पक्ष में पड़ने की वजह से ये सभी परेशानियाँ हो गई हैं, अनुकूल के पक्ष में पड़े इसलिए। इस प्रतिकूल की झंझट खत्म हो गई तो पूरी दुनिया आपके काबू में आ गई। अब, आप तो सभी पुण्यशाली लोग हैं, अब आपके लिए ज्यादा से ज्यादा प्रतिकूल कितना आएगा? वह भी पुण्यशाली के भाग में आता है, जो बहुत पुण्यशाली हो न उसे। आप तो इतने ज़्यादा पुण्यशाली नहीं हैं तो आपके पास ज़्यादा नहीं आएगा। यानी कि आपके लिए प्रतिकूलता बहुत नहीं आएगी। ज़्यादा कहाँ से आएगी? इनके भाग में कहाँ से होगी? अत: प्रतिकूलता को आप अनुकूलता बना देना।

प्रतिकूलता से होती है हितकारी गढ़ाई

नापसंद आए, वह आत्मा के लिए हितकारी ही होता है। वही आत्मा का विटामिन है। भारी दबाव (विपरित) आए तो तुरंत आत्मा के लिए ही है न? अभी कोई गाली दें न, उस समय वह संसार में नहीं रहता। वह खुद के आत्मा में ही चला जाता है। लेकिन यह, उसके लिए है जिसने आत्मा जाना है। और नहीं जाना है फिर भी, एक बुज़ुर्ग माँजी थीं वे अस्सी साल की थीं, वे बाहर निकलकर कलह कर रही थीं। 'अरे, यह संसार खारा दु:ख भरा है, खारा दु:ख भरा है।' मैंने पूछा, 'माँजी, अस्सी साल तक यह मीठा लगा और अभी खारा कैसे लग गया?' तो हम पूछे कि, 'माँजी ऐसा सब क्या हो गया? कहाँ खारा है?' तब कहने लगीं, 'अरे, खारा ही है'। ऐसा क्या हुआ? तब कहने लगीं, 'बेटे बहुत गालियाँ देते हैं।' जब वे बेटे गालियाँ देने लगे तब माँजी को इस संसार का भान हुआ कि, 'यह संसार खारा है।' वर्ना खारा, है ही खारा। मीठा लगता है वह उस मोह के कारण। अत: विपरीत आए न, तो वह बहुत हितकारी है।

यह संसार आँखों से दिखने में सुंदर लगे, ऐसा है। वह छूटे किस तरह? मार खाए और लगे, फिर भी वापस भूल जाता है। ये लोग कहते हैं न, कि वैराग्य नहीं रहता, वह किस तरह रहेगा?

प्रतिकूल संयोग बहुत हितकारी है, आत्मा के लिए विटामिन है। अनुकूल संयोग देह के लिए विटामिन है उससे शरीर अच्छा रहेगा, डॉक्टर के पास नहीं जाना पड़ेगा।

ये अच्छा-अच्छा भोजन, रस-रोटी, वे सब शरीर के लिए विटामिन है। तो हमें शरीर का विटामिन फेंक नहीं देना है। लेकिन आत्मा का विटामिन आ जाए तो उसमें क्या नुकसान है? अत: अपने लिए तो दोनों ही विटामिन हो गए हैं। नापसंद आ गया, वह आत्मा का विटामिन और पसंदीदा आया, वह शरीर का विटामिन। अत: कोई अड़चन (परेशानी) ही नहीं रही न! दोनों ही हिसाब क्लियर हो गए न!

अनुकूल 'पोलिश' करता है और प्रतिकूल गढ़ाई करता है। अत: दोनों में हमें क्या परेशानी है? हमारे लिए तो सबकुछ हितकारी हो गया।

प्रतिकूलता है, अपना थर्मामीटर

प्रतिकूलता अपना थर्मामीटर है। कोई खराब व्यक्ति आया तो वह अपना थर्मामीटर है। उससे यह पता चल जाता है कि अपना पारा चढ़ गया या उतर गया है। यदि हम पैसे से लेने जाएँ तो थर्मामीटर नहीं मिलता। अत: यदि हमें प्रतिकूल मिले तो बल्कि उपकार मानना चाहिए कि, 'भाई, तू मेरा थर्मामीटर, मुफ्त में मिल गया।'

हम घर पर आए और आते ही कुछ *उपाधि* (परेशानी) खड़ी हो गई तो हम समझ जाते हैं कि हमें अभी तक ऊँचे-नीचे परिणाम बरतते हैं। वर्ना भीतर ठंडक हो गई है, ऐसा भी पता चलता है। उसके लिए थर्मामीटर चाहिए न? वह थर्मामीटर बाज़ार में नहीं मिलता है, अपने घर में एकाध हो तो अच्छा। अभी यह कलियुग है, दूषमकाल है, इसलिए घर में दो-चार 'थर्मामीटर' होते ही हैं, एक नहीं होता! वर्ना, हमारा माप कौन निकालेगा? किसी को किराये पर रखें, तो भी नहीं करेगा! किराये वाला अपना अपमान करेगा, लेकिन उसका मुँह फूला हुआ नहीं होगा, इसलिए हम समझ जाएँगे कि यह बनावटी है! और यह तो 'एक्ज़ेक्ट'! मुँह-वुँह फूला हुआ, आँखें लाल, पैसे खर्च करने पर भी ऐसा नहीं हो सकता जबकि यह तो हमें मुफ्त में मिलता है!

अब, आपको अपमान पसंद है?

प्रश्नकर्ता : दादा, कोई अपमान करे तब जागृति ज़्यादा रहती है।

दादाश्री : तो फिर मन्नत क्यों नहीं माँगते? किसी की मन्नत मानोगे तो लोग अपमान करने की शुरुआत करेंगे। कोई करने वाला नहीं मिलता, नहीं? इसीलिए एक बहन कह रही थी कि, 'रात भर, जैसे कोई परेशान कर रहा हो, उस तरह से कोई मारता है। उसके लिए विधि कर दीजिए न।' मैंने कहा, 'परेशान करता है तो बहुत अच्छा है। तेरे पुण्य जाग्रत हुए हैं कि मोक्ष में जाओ। परेशान करने वाला क्या कहता है? मोक्ष में जाओ! तो परेशान करने वाला हो तो अच्छा है न?

प्रश्नकर्ता : हाँ जी। सभी प्रतिकूलताएँ उपकारी हैं। पर...

दादाश्री : और लोग कहते हैं, हमें प्रतिकूल अच्छा नहीं लगता, जो अधिक जागृति बढ़ाए वह हमें अच्छा नहीं लगता। बल्कि प्रतिकूलता तो विटामिन है। अत: प्रतिकूल तो बल्कि बहुत अच्छा है।

प्रतिकूलता में बढ़ती है जागृति

प्रश्नकर्ता : अनुकूलता में यह सब ठंडा पड़ जाता है और प्रतिकूलता में जागृति अधिक रहती है, ऐसा क्यों?

दादाश्री : अनुकूलता में तो ऐसा है न, उसे मीठा लगता है न! ठंडी हवा आ रही हो तो एक घंटा बीत जाता है और यदि बहुत गर्मी हो तो एक घंटा निकालना हो तो कितना मुश्किल लगता है! जबकि ठंडक में एक घंटा आसानी से बीत जाता है। उसी तरह खाना यदि अच्छा हो तो जल्दी से खा लिया जाता है और बहुत भूख लगी हो लेकिन खाना इतना अच्छा नहीं हो तो फिर जबरन खाना पड़ता है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन प्रतिकूलता में जागृति ज़्यादा क्यों रहती है?

दादाश्री : प्रतिकूलता आत्मा का विटामिन है और अनुकूलता देह का विटामिन है। अनुकूल संयोगों से शरीर अच्छा रहता है और प्रतिकूल संयोगों में आत्मा अच्छा रहता है। ये सभी संयोग

फायदेमंद हैं। यदि समझना हो तो सभी संयोग फायदेमंद हैं।

प्रश्नकर्ता : अब, कोई ऐसा सब लेकर आया हो कि जिसे प्रतिकूलताएँ न आती हों, तो फिर वह आत्मा का विटामिन लेने कहाँ जाएगा?

दादाश्री : कहाँ जाएगा? वह तो, आत्मा का विटामिन उसे मिलेगा ही नहीं फिर।

प्रश्नकर्ता : फिर वह *गारवता* (सांसारिक सुख की ठंडक में पड़े रहना) में गिर जाएगा?

दादाश्री : वह सब जो है आपका उसी में जाएगा, *गारवता* में। उनको बरकत नहीं होगी उसमें। प्रतिकूलता तो रहती है लेकिन कुछ हल्के प्रकार की रहती है और वह तो फिर *गारवता* में चला जाएगा। उसके बजाय प्रतिकूलता लेकर आया हो, वह अच्छा है।

अनुकूलता के कषाय अनंत जन्मों तक भटकाते हैं

यानी कि प्रतिकूल (संयोग) तो हमें जागृति में लाएँगे ही। लेकिन ये अनुकूल जागृति में नहीं लाते न! अनुकूल हैं, वे।

प्रश्नकर्ता : हम अनुकूल से अलग है, ऐसा ख़याल रखने का मन नहीं होता। जबकि प्रतिकूल से अलग है, उसका जल्दी ख़याल आ जाता है।

दादाश्री : प्रतिकूल का तो तुरंत ख़याल आ जाता है। अब कोई व्यक्ति सो रहा हो वह यों ही ज़रा सी नींद में हो, उस पर हम कितना भी ठंडा पानी डालें, सर्दी के दिनों में, फिर भी वह नहीं उठता। लेकिन यदि साँप का छोटा सा बच्चा देख ले तो..! उसके जैसा है यह प्रतिकूल! अनुकूल में तो ऐसा होता है न! 'हाँ, उठ रहा हूँ', कहता है। 'हाँ, उठ रहा हूँ', ऐसा कहकर करवट बदलकर सो जाता है। हमसे कहता भी है, 'हाँ, उठ रहा हूँ, अभी उठ रहा हूँ, आप अपने कपड़े पहनो तब तक में तैयार हो जाऊँगा।' फिर करवट बदलकर वापस सो जाता है, उसके जैसा है अनुकूल।

अनुकूल संयोग है न? अनुकूल में ठंडक महसूस होती है। इतना ही कमजोर पड़ जाता है।

प्रश्नकर्ता : अनुकूल संयोगों में कषाय भाव नहीं आता और प्रतिकूल संयोगों में कषाय भाव बहुत आ जाते हैं, तो उसके लिए क्या करें?

दादाश्री : ऐसा है न, कि सिर्फ प्रतिकूल में ही कषाय होते हैं, ऐसा नहीं है। अनुकूल में बहुत कषाय होते हैं, परंतु अनुकूल के कषाय ठंडे होते हैं। उन्हें राग कषाय कहते हैं। उसमें लोभ और कपट दोनों होते हैं। उसमें वास्तव में ऐसी ठंडक लगती है कि दिनोंदिन गाँठ बढ़ती ही जाती है। अनुकूल सुखदायी लगता है, परंतु सुखदायी है वही बहुत विषम है।

प्रश्नकर्ता : अनुकूल में तो पता ही नहीं चलता कि ये कषाय भाव हैं।

दादाश्री : उनमें कषाय का पता नहीं चलता, परंतु वे ही कषाय मार डालते हैं। प्रतिकूल के कषाय तो भोले होते हैं बेचारे! उसका जगत् को तुरंत ही पता चल जाता है। जबकि अनुकूल के कषाय, लोभ और कपट तो फलफूलकर बड़े होते हैं! प्रतिकूल के कषाय मान और क्रोध हैं। वे दोनों द्वेष में आते हैं। अनुकूल के कषाय अनंत जन्मों तक भटका देते हैं। आपको समझ में आ गया न?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : इसलिए दोनों गलत हैं–अनुकूल और प्रतिकूल।

द्वेष, वह प्रतिकूल कषाय कहलाता है और राग, वह अनुकूल कषाय कहलाता है। अनुकूल को जब छोड़ना हो तब छोड़ा जा सकता है, परंतु

अनुकूलता में बहुत जागृति रखनी पड़ती है। प्रतिकूल कड़वा लगता है और कड़वा लगता है इसलिए तुरन्त ही जागृति आ जाती है। अनुकूल मीठा लगता है।

कषाय बहुत दु:खदायी है न? और वे जो सुख देते हैं वे कषाय, वे क्या हैं?

प्रश्नकर्ता : वह तो आपने कहा तब पता चला कि वे महादु:खदायी हैं। वर्ना अनुकूल में कषाय होते हैं, वह समझ में ही नहीं आता था।

दादाश्री : 'ज्ञानी पुरुष' के बताए बिना मनुष्य को खुद की भूल का पता नहीं चलता, ऐसी अनंत भूलें हैं। यह एक ही भूल नहीं है। अनंत भूलों ने घेरा हुआ है।

प्रश्नकर्ता : भूलें तो पग-पग पर होती हैं।

दादाश्री : ये अनुकूल, वे कषाय कहलाते हैं, ऐसा आप अच्छी तरह समझ गए हो न?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : ये जो निरंतर *गारवरस* (संसारी सुख की ठंडक में पड़े रहने की इच्छा) में रखता है, खूब ठंडक लगती है, खूब मज़ा आता है। ये ही कषाय हैं, जो भटकाने वाले हैं। और प्रतिकूलता में द्वेष कषाय, यानी क्रोध और मान होते हैं।

प्रतिकूलता में बढ़े वास्तविक जागृति

प्रश्नकर्ता : अनुकूलता में भी जागृति में रहे तो अधिक फायदा है न?

दादाश्री : पूरी तरह से नहीं रह सकता। इसलिए हम तो, यदि नहीं हो फिर भी प्रतिकूल कर देते हैं।

प्रश्नकर्ता : अनुकूल और प्रतिकूल वह तो मानने पर आधारित हैं न कि यों स्वाभाविक ही हैं?

दादाश्री : हैं एक्ज़ेक्ट। लेकिन जब तक मन है, तब तक वे होते ही हैं न! जब तक मन का आधार है, तब तक होते ही हैं।

प्रश्नकर्ता : इस देह को भी सब अनुकूल और प्रतिकूल लगता ही है न?

दादाश्री : वास्तव में देह को नहीं लगता, मन का है।

प्रश्नकर्ता : गर्मी लगने पर एकदम बेचैनी हो जाए तो यह गर्मी देह को लगती है या मन को?

दादाश्री : मन को। देह को कुछ नहीं लगता। बुद्धि कहे तो मन शुरू हो जाता है, बुद्धि नहीं कहे तो कोई हर्ज नहीं। बुद्धि अर्थात् संसार जागृति।

प्रश्नकर्ता : प्रतिकूलता भी अनुकूलता ही है। अंदर ऐसी भी उल्टी सेटिंग कर सकता है न बुद्धि से?

दादाश्री : हाँ, लेकिन जिसे मोक्ष में जाना हो, वह ऐसी सेटिंग करता है कि यह तो अनुकूल ही है। सच्चा लाभ इसी में है, प्रतिकूलता में। हम सर्दी में भी ओढ़ा हुआ निकाल देते हैं, इसलिए जागृति रहती है।

प्रश्नकर्ता : उस समय कैसी जागृति में रहते हो?

दादाश्री : जागृति, जागृति में रही, वर्ना जागृति सो जाती है।

प्रश्नकर्ता : ठंड लगने से नींद नहीं आती इसलिए फिर जग जाते हैं। फिर जागृति में रहना है, इस तरह?

दादाश्री : वर्ना नींद आ जाती है और उस समय कोई जगाने वाला नहीं होता है न!

प्रश्नकर्ता : तब अंदर कौन सी जागृति में रहे?

दादाश्री : अजागृति कम हो जाती है न! जागने पर, तू जो कुछ भी जानता है कि 'मैं शुद्धात्मा हूँ', ऐसा ही रहता है न!

आपके भी अब सिर्फ संयोग ही बचे हैं। मीठे संयोगों का आपको उपयोग करना नहीं आता। मीठे संयोगों का आप वेदन करते हो, इसलिए कड़वों का भी वेदन करना पड़ता है। परंतु यदि मीठे को 'जानो', तो कड़वे में भी 'जानपना' रहेगा! लेकिन आपकी अभी पहले की आदतें जाती नहीं, इसलिए वेदन करने जाते हो। आत्मा वेदन करता ही नहीं, आत्मा जानता ही रहता है। जो वेदन करता है वह भ्राँत आत्मा है, प्रतिष्ठित आत्मा है। उसे भी हमें जानना है कि 'ओहोहो! यह प्रतिष्ठित आत्मा जलेबी में तन्मयाकार हो गया है।'

अनुकूल में राग नहीं, प्रतिकूल में द्वेष नहीं

प्रश्नकर्ता : यानी कि इन संयोगों के बारे में, 'प्रतिकूल' और 'अनुकूल' वे शब्द हमने बनाएँ हैं।

दादाश्री : सबकुछ अपना ही है, यह तो सब मन का साधन है, राग-द्वेष का साधन है। क्योंकि जहाँ अनुकूल है वहाँ राग और जहाँ प्रतिकूल है वहाँ द्वेष। जिसके राग-द्वेष चले गए, उसके लिए फिर कुछ भी अनुकूल या प्रतिकूल नहीं रहता। शायद कभी कहे अनुकूल या प्रतिकूल, लेकिन उस पर उसे राग-द्वेष नहीं होते। क्योंकि शरीर को तो अनुकूल की आदत है।

प्रश्नकर्ता : नहीं दादाजी, वह भी एक प्रश्न है कि ऐसा कुछ नहीं है। ऐसा भी नहीं है, कि शरीर को अनुकूल की आदत है। अब आपका शरीर, उसमें ऐसा नहीं है कि उसे अनुकूल की आदत है।

दादाश्री : नहीं! लेकिन मेरे शरीर को तो कुछ चीज़ों में अनुकूल की आदत नहीं है, परंतु भीतर कुछ बाबतें ऐसी थोड़ी बहुत रही हैं।

प्रश्नकर्ता : लेकिन वह तो, ऐसा मौका तो दादाजी के लिए बहुत कम आता है न।

दादाश्री : इस अनुकूलता में से ही बाहर निकल रहा है। अनुकूलता को छोड़ते-छोड़ते बाहर निकल रहा है। इसलिए हम ऐसा समझें कि उसे अनुकूलता की आदत है तो वह अनुकूलता ढूँढेगा। लेकिन हम ऐसा समझ लें कि, 'अनुकूलता क्या है' तो वह समझ ही हमारे काम आएगी। अनुकूलता पर राग नहीं और प्रतिकूलता पर द्वेष नहीं, वह अपना स्वभाव। अच्छा खाना आए तो खुशी से खाता ही है, उसके लिए तो मना कैसे किया जा सकता है? उसके चेहरे पर देखें तो खुशी नहीं दिखाई देती? और जब कड़वा आता है तब? चेहरा नहीं बिगड़ता लेकिन नाखुश तो होता ही है, ऐसा है। कड़वा फल मीठा है और मीठा कड़वा है, जब ऐसा समझ जाएगा, तब मोक्ष में जाएगा!

'नापसंद' अपनी डिक्शनरी में नहीं होता

नरम (सुगम) को पसंद किया तो वापस खुरदरा (विषम) होकर आएगा, इसलिए हमें तो खुरदरे से ही 'फ्रेन्डशिप' कर लेनी है। जो नापसंद है, उसी को पसंदीदा बना लेना है। आत्मा के तो अनंत पांसे हैं। जिस पांसे से घुमाया, उस पांसे जैसा बन जाता है।

प्रश्नकर्ता : मैं नापसंद हो ऐसे भी काम करता हूँ लेकिन आप पूछ रहे हैं इसलिए बता रहा हूँ कि यह पसंद नहीं है, ऐसा।

दादाश्री : 'नापसंद' यह शब्द ही निकाल दो। अपनी डिक्शनरी में यह शब्द ही नहीं चाहिए।

कोई आपसे कहे कि, 'आप नालायक हो' तो वह आपको अच्छा लगता है? तब कहता है, 'हाँ, मुझे अच्छा लगता है' तो फिर, 'लायक है', ऐसा कहे तो अच्छा लगता है ऐसा? 'लायक है',

वह अच्छा लगेगा तो तुम्हारी कमज़ोरी रहेगी और 'नालायक है', ऐसा कहने से यदि अच्छा लगेगा तो तुम्हारी कमज़ोरी चली जाएगी। वे साहब तो कहते हैं कि, 'अपमान भी दो और मान भी दो, दोनों दो।'

यह 'पसंद नहीं है', उसका कोई हल लाना है या नहीं लाना? यह जो 'पसंद है' उसका भी हल लाना है, इन्हें संभालकर नहीं रखना है। जो बातें 'अच्छी लगती हैं', उन्हें संभालकर नहीं रखना है, उनका भी हल लाना है और इनका भी हल लाना है। जो 'अच्छा लगता है', वह भरा हुआ राग निकल रहा है और जो 'अच्छा नहीं लगता', वह भरा हुआ द्वेष निकल रहा है। अत: द्वेष का हल लाना है। यानि वहाँ पर हमारी तरह रहना है, सभी के साथ मिल-जुलकर! क्योंकि द्वेष की वजह से जुदाई हो जाती है। मिल-जुलकर रहने से जुदाई मिट जाती है और द्वेष खत्म हो जाता है।

नापसंद में रखो साफ मन

नापसंद साफ मन से सहन कर पाएँगे, तब वीतराग हो पाएँगे।

प्रश्नकर्ता : साफ मन का मतलब क्या?

दादाश्री : साफ मन यानी सामने वाले के लिए खराब विचार नहीं आएँ, वह। यानी क्या? कि निमित्त को दु:ख नहीं दे। यदि सामने वाले के लिए खराब विचार आ जाएँ तो तुरंत ही प्रतिक्रमण कर ले और उसे धो दे।

प्रश्नकर्ता : मन साफ हो जाए, वह तो अंतिम स्टेज की बात है न? और जब तक संपूर्ण साफ नहीं हुआ, तब तक प्रतिक्रमण करने पड़ेंगे न?

दादाश्री : हाँ, वह सही है, लेकिन कुछ बाबत में साफ हो चुका होता है और कुछ बाबत में नहीं हुआ होता। वे सब स्टेपिंग हैं। जहाँ साफ नहीं हुआ है वहाँ प्रतिक्रमण करना पड़ेगा।

हमें तो शुरू से ही दुनिया के एक-एक शब्द का विचार आता था। पहले भले ही ज्ञान नहीं था लेकिन 'विपुल मति' थी इसलिए बोलते ही स्पष्ट समझ में आ जाता था। चारों ओर का तौल निकल जाता था। बात निकले तो तुरंत ही सार निकल जाए, उसे 'विपुल मति' कहते हैं। विपुल मति होती ही नहीं है न किसी में! 'यह' तो एक्सेप्शन (अपवाद) केस बन गया है! जगत् में विपुल मति कब कहलाती है? एवरीव्हेर एडजस्ट कर पाए, ऐसी मति हो तब। यह तो कच्चा काटना हो, उसे उबाल देता है और उबालना हो, उसे कच्चा काट देता है तो कहाँ से एडजस्ट होगा? लेकिन एवरीव्हेर एडजस्ट होना चाहिए।

अनुकूल में हम बहुत सावधान रहते थे

हमें 'स्वरूपज्ञान' नहीं हुआ था, तब अनुकूल में हम बहुत सावधान रहते थे। प्रतिकूल में तो हमें पता चल जाएगा। अनुकूल से ही सब (लोग) भटक गए हैं। किसीके घर में साँप घुस गया और उसने उसे देख लिया हो तो उसे हमें यह नहीं कहना पड़ता कि साँप घुस गया है, जागते रहना! यानी कि जागते रहने जैसा यह जगत् है। ये जो भूलें करवाती है और जो झोंका खिला देती है, वह सब अनुकूलता ही करवाती है।

यह तो, मैंने खुद पर पंखे का अनुभव लिया था कि मुझे क्या होता है? पहले पंखा नहीं रखता था। 1956 तक तितिक्षा नामक गुण का विकास किया। हमेशा एक दरी पर सो जाता था और पंखा नहीं रखता था। जब सारे मित्र आते थे तो वे कहते थे कि, 'आप तो पंखा नहीं रखते हैं क्योंकि आप तो तपस्वी पुरुष हैं लेकिन हमारा क्या होगा?' तब मैंने कहा कि, 'चलो लगाते हैं।' पंखा लगाने से बाद में यह शरीर आरामपसंद हो गया।

एक किसान रोज़ जूते पहने और फिर कभी

जूते नहीं हों तो तब उसके पैर जल जाएँगे। वर्ना शरीर ऐसा बन जाता है कि जले ही नहीं। अत: अब आरामपसंद हो गए हैं तो परवश होना पड़ता है। जब पंखा नहीं होता तो परवश होना पड़ता है। और मुझे उपयोग बाहर रखने में परेशानी होती है। यह हुआ क्या, मैं अपनी वह बात बता रहा हूँ। अत: इस बात को आप समझना। पंखा बंद मत कर देना लेकिन यह पंखा हितकारी नहीं है, ऐसा मानना।

प्लस-माइनस के एडजस्टमेन्ट से सबकुछ अनुकूल

एक बार हम नहाने के लिए गए और बाथरूम में मग्गा रखना ही रह गया था। फिर हम ज्ञानी कैसे? एडजस्ट कर लेते हैं। पानी में हाथ डाला तो पानी बहुत गरम था। नल खोला तो टंकी खाली थी। फिर हमने तो धीरे-धीरे हाथ से पानी लगा-लगाकर नहा लिया। सब महात्मा कहने लगे, 'आज दादा को नहाने में बहुत समय लगा।' लेकिन क्या करें? पानी ठंडा हो तब न? हम किसी से भी यह लाओ और वह लाओ नहीं कहते हैं। एडजस्ट हो जाते हैं। एडजस्ट होना वही धर्म है। इस दुनिया में तो प्लस-माइनस का एडजस्टमेन्ट करना होता है। जहाँ माइनस हो वहाँ प्लस और जहाँ प्लस हो वहाँ माइनस करना है। हम तो, हमारे सयानेपन को भी यदि कोई पागलपन कहे तो हम कहते हैं, 'हाँ, ठीक है।' यानी तुरंत माइनस कर देते हैं।

अक्लमंद कौन कहलाता है? वह जो किसी को भी दु:ख नहीं पहुँचाए और यदि कोई उसे दु:ख पहुँचाए, तो उसे जमा कर ले। सभी को सारा दिन ऑब्लाइज (उपकार) करता रहे। सुबह उठते ही उसका लक्ष्य यही होता है कि मैं कैसे लोगों को हेल्पफुल हो सकूँ, ऐसा जिसे लगातार रहा करे, वह मानव कहलाता है। उसे फिर आगे चलकर मोक्ष की राह भी मिल जाती है।

संसार में और कुछ नहीं आए तो हर्ज नहीं, लेकिन 'एडजस्ट' होना तो आना ही चाहिए। सामने वाला 'डिसएडजस्ट' होता रहे, लेकिन आप 'एडजस्ट' होते रहो, तो संसार तैरकर पार उतर जाओगे। जिसे दूसरों को अनुकूल होना आया, उसे कोई दु:ख ही नहीं रहता। इसलिए 'एडजस्ट एवरीव्हेर'! प्रत्येक के साथ 'एडजस्टमेन्ट' हो जाए, यही सब से बड़ा धर्म है। इस काल में तो भिन्न-भिन्न प्रकृतियाँ हैं, इसलिए 'एडजस्ट' हुए बिना कैसे चलेगा?

आई हुई प्रतिकूलता के सामने तप

ऐसा है, इस काल में जीवों को जान-बूझकर तप नहीं करने हैं और अनजाने में जो तप आ जाएँ, अपने आप आ पड़ें, तो वैसे तप करने को कहा है। क्योंकि इस दूषमकाल में एक तो मनुष्य मूलत: तपा हुआ ही होता है, फिर घर में हो, बेडरूम में हो या उपाश्रय में हो लेकिन होता है तपा हुआ ही। तपे हुए को तपाकर क्या काम है? सिर मुंडवाकर पगड़ी पहनने जैसी बात है यह। प्याला फूटे तब तप करना है। बेटा दुकान पर नहीं गया, तब तप करना है। प्रतिकूलता में जब हमारी प्रकृति उछले तब भीतर घमासान मच जाता है, उस समय तप करना है। इस काल में आए हुए तप करने हैं।

यह तप किसी और का सीखकर करने जैसा नहीं है। तेरा मन ही रात-दिन तपा हुआ है न! तेरा मन, वाणी और वर्तन जो तपे हुए हैं, उन्हें तू शांत भाव से सहन कर, वही खरा तप है! जब मन, वाणी और वर्तन तपे हुए होते हैं, तब उस समय उनमें तन्मयाकार रहता है, और जब कुछ भी तपा हुआ नहीं होता, तब तप करने बैठता है लेकिन फिर उस समय किस काम का? तप तो कब करने को कहा है भगवान ने? जब सभी ज़हर देने वाले आएँ, उस समय भीतर अंतर तपे तो भी सहन कर लेना, लाल-लाल हृदय हो

जाए तो भी शांत भाव से सहन कर लेना। भगवान ने तप को बुलाकर लाने को नहीं कहा है, आ पड़े तप का हँसते मुख से स्वागत कर लेने को कहा है। तब ये लोग तो आ पड़े तप को इधर-उधर धकेलते हैं, मुँह बिचकाते हैं, यानी जो वह तप देने आया हो, उसे अनेक गुना करके वापस दे देते हैं, और नहीं आए हुए तप को बुलाने जाते हैं। नहीं हो वहाँ से, किसी का देखकर सीख आते हैं और तप करने बैठते हैं! अरे, तप भी किसी का सीखकर किया जाता होगा? तेरा तप अलग है, उसका तप अलग है, हर एक का तप अलग-अलग होता है। हर एक के कॉज़ेज़ अलग-अलग होते हैं और आज के काल में तप तो सामने से ही आसानी से आ पड़ें, ऐसा है।

भगवान महावीर ने कहा था कि, 'कलियुग में सावधानी से चलना। तुझे जो तप प्राप्त हो उसे भोगना और अप्राप्त तप खड़ा मत करना।' सामने वाला व्यक्ति टकरा जाए और तुझे यहाँ पर लग जाए तो उस तप में शांति से तपना, जबकि वहाँ तो झगड़ा करता है और घर आकर कहेगा कि, 'कल तो मुझे उपवास करना है।' 'अरे, ऐसा किसलिए करता है? तुझे यदि शरीर की अनुकूलता नहीं हो तो एक-दो पहर का उपवास कर ले, उसमें हर्ज नहीं है, वह सहज स्वभाव है। ऐसा जानवरों में भी होता है लेकिन ऐसा तूफान करने की ज़रूरत ही नहीं है।' भगवान ने कहा है कि, 'तीनों काल में, द्वापर, त्रेता और सत्युग में त्याग करना, तप करना, लेकिन चौथे काल में, कलियुग में तो तुझे तप-त्याग ढूँढने नहीं जाना पड़ेगा, मोल लेने नहीं जाना पड़ेगा।' वह तो जिस काल में मोल लेने जाना पड़ता था, उस काल में ये तप थे, क्योंकि पूरे दिन ढूँढने पर भी तप मिलते ही नहीं थे न! वे काल चले गए सारे। अभी तो कितने सारे तप मिलते हैं।

अनार्य देश में भगवान महावीर के तप

महावीर भगवान को तप खोजने जाना पड़ता था उस काल में भी! लोग तो तप वाले थे, लेकिन भगवान को तप नहीं आता था न? भगवान को तप नहीं आते थे इसलिए उनके मन में विचार आया कि, 'ये सभी भिक्षा देते हैं तो मेरे लिए ध्यान रखकर खाना बनाते हैं और फिर देते हैं। कोई मुझे गालियाँ नहीं देता, कोई मुझे कुछ भी नहीं करता। अभी तो मेरे भीतर कर्म के उदय बाकी हैं', उसका उन्हें खुद को पता चल जाता था। जैसे वॉमिट (उलटी) होने वाली हो तो व्यक्ति को उसका पता चल जाता है, उसी तरह ज्ञानियों को बहुत समय बाद कर्म की वॉमिट होने वाली हो तो वह भी पता चल जाता है। ऐसे कर्मों की ज्ञानी *उद्दीरणा* (भविष्य में फल देने वाले कर्मों को समय से पहले जगाकर वर्तमान में खपाना) करते हैं, मनुष्य में *उद्दीरणा* की सत्ता है। इसलिए महावीर भगवान ने सोचा कि, 'लाओ, आर्य देश में से अनार्य देश में जाऊँ तो मेरे ये कर्म झड़ जाएँगे। कर्म का हिसाब है।' आर्यदेश के लोग तो 'पधारिए, पधारिए' करते थे और भगवान पर पुष्प बरसाते थे, इसलिए भगवान को हुआ कि अनार्यदेश में जाऊँ। अब अनार्यदेश साठ मील दूर था, तो मुख्य सड़क पर से जाने को नहीं मिला। पूरे गाँव के लोग साथ में विदा करने आए थे। लोगों ने भगवान से विनती की कि, 'भगवान, आप इस सँकरे रास्ते पर से मत जाइए। इस रास्ते पर चंडकोशिया नाग रहता है, वह नाग इस जंगल में किसी को प्रवेश ही नहीं करने देता, जो जाता है उसे जीवित नहीं निकलने देता। भगवान, वह आप पर उपसर्ग करेगा।' लेकिन भगवान ने कहा कि, 'आप सब मना कर रहे हो, लेकिन मुझे तो यहीं से होकर जाने की ज़रूरत है। मुझे मेरे ज्ञान में ऐसा दिख रहा है। मैं आग्रही

नहीं हूँ, लेकिन मेरे ज्ञान में दिख रहा है इसलिए आप सब शांतिपूर्वक रहो और मुझे जाने दो।' तब गाँव के सभी लोग वहीं खड़े रहे। कोई जंगल में घुसेगा ही नहीं न! चंडकोशिया का नाम सुने, तो फिर कौन जाए? 'भगवान को जाना हो तो जाएँ', कहेंगे! चंडकोशिया की बात आई तो भगवान-वगवान सब छोड़ दिया! छोड़ देंगे या नहीं छोड़ देंगे ये लोग?

भगवान तो जंगल के रास्ते गए। वहाँ चंडकोशिया को सुगंध आई, तो फिर वह बिफरता ही न? वह तो किसी जानवर को भी जंगल में नहीं आने देता था, वह बिफरता हुआ भगवान के सामने आया और भगवान के पैर में डंक मार दिया। डंक मारते ही थोड़ा खून उसके मुँह में आ गया। खून मुँह में जाते ही उसे पिछले जन्म का भान हुआ। तब भगवान ने वहाँ उसे उपदेश दिया, 'हे चंडकोशिया! बूझ-बूझ! क्रोध को शांत कर।' पिछले जन्म में चंडकोशिया साधु था और शिष्य पर क्रोध किया इसलिए उसकी यह दशा हुई! 'इसलिए अब शांत हो जा। तुझे ज्ञान हुआ है, वैसा तू शुद्धात्मा है'। चंडकोशिया भान में आ गया, पूर्वजन्म का उसे ज्ञान हो_आया, पिछले जन्म में उसे साधुपन था। उसने शिष्य पर क्रोध किया था, कैसा भयंकर क्रोध? ऐसा-वैसा नहीं। ये लोग पत्नियों पर करते हैं, वैसा नहीं। शिष्य तो फँस गया, फिर क्या गुरु उसे छोड़ेंगे? फिर उस फँसे हुए को गुरु धमकाते ही रहते हैं! उसके बाद साँप वहीं पर पछाड़े खाकर मर गया। उसके ऊपर खूब चींटियाँ चढ़ गई थीं, क्योंकि पछाड़े खाई इसलिए खून निकला और खून निकला तब चींटियाँ चढ़ने लगीं और फिर चींटियाँ खींचातानी करने लगीं! चंडकोशिया को अत्यंत जलन होने लगी लेकिन उसने शांति से तप किया और वह अच्छी गति में पहुँच गया।

भगवान वहाँ से अनार्य, अनाड़ी देश में विचरे। वहाँ पर लोगों ने उन्हें, 'अरे, ये साधु आया है, इसे पत्थर मारो, यह कैसा साधु है? कपड़े-वपड़े नहीं पहनता। मारो इसे।' तो भगवान को तो अंदर घुसने से पहले ही प्रसाद मिलने लगा! भगवान तो जानते थे कि, 'मैं कहाँ प्रसाद खा रहा हूँ?' तो उन्हें तो, 'खुब प्रसाद' मिलने लगा। किसी जगह पर कोई दयालु व्यक्ति हो तो वह रोटी का टुकड़ा दे देता था। आर्यदेश में तो मिठाइयाँ मिलती थीं, वे यहाँ कहाँ से लाते? भगवान ने कुछ काल अनाड़ी देश में बिताकर, जब कर्म क्षय हो गएँ तब वापस लौटे। अभी तो सब को घर बैठे ही अनाड़ी देश है, तो भी लोग झंझट करते हैं!

प्राप्त तप का शांति से निकाल

आप तो कितने पुण्यशाली हो कि आपके लिए घर बैठे ही अनाड़ी देश है। आप घर में आए कि अपना घर ही अनाड़ी देश। जहाँ खाना खाएँ वहीं पर, खाते-पीते हैं वहीं पर अनाड़ी देश होता है। अब यहाँ पर तप में तपना है। भगवान को तप ढूँढने के लिए साठ मील विचरना पड़ा था, अनाड़ी देश ढूँढने के लिए! जबकि आज तो घर बैठे ही लोगों का अनाड़ीपन नहीं लगता? तो मुफ्त का तप मिला है तो शांति से सहन कर लो न! इस काल के लोग भी कितने पुण्यशाली हैं! इसे प्राप्त तप कहते हैं। अड़ोसी-पड़ोसी, भागीदार, भाई, पत्नी, बच्चे, सभी तप करवाएँ, ऐसे हैं! पहले के काल में तो घर में सारी अनुकूलता रहती थी। यह प्रतिकूल काल आया है। घर बैठे ही प्रतिकूलता है, बाहर ढूँढने नहीं जाना पड़ता। यह काल ही ऐसा है कि कहीं भी एडजस्टमेन्ट ही नहीं हो पाता। घर में, बाहर, पड़ोसी, सब तरफ से ही डिस्एडजस्टमेन्ट आता है, उसे तू सहन कर और एडजस्ट हो जा।

प्रतिकूलता में कहना, 'दादाई बैंक' खुला है

उल्टी समझ, वही दुःख है और सीधी समझ, वह सुख है। उसे कौन सी समझ मिल रही है, वह देखना है। उल्टी समझ की गाँठ पड़ी तो दुःख, दुःख और दुःख और वह गाँठ सीधी समझ से छूट गई तो सुख, सुख और सुख! और कोई सुख-दुःख है ही नहीं दुनिया में, यानी कि उल्टी समझ से ही गाँठ पड़ जाती है। बल्कि थोड़े-बहुत देह के दंड तो होते हैं! देह धारण करने के दंड तो रहेंगे न? दाढ़ दुःखे तो क्या कोई दुःख देने आया है? वह तो देह का दंड कहलाता है। किसी रिश्तेदार का हिसाब हो और जब वह चुकाए तो क्या हम उन्हें मना कर सकते हैं? यदि आप कहो कि, 'दादा, अभी हिसाब बंद कर दीजिए।' तो दादा बंद कर देंगे, लेकिन खाते में बाकी रहा न! तो वसूली वाले को घर पर चाय-पानी पिलाकर ''अलीसा'ब, अलीसा'ब'' करके फिर वापस भेज दें, फिर भी वह वापस तो आएगा न? इसके बजाय एक बार दे ही दे न यहाँ से! वर्ना फिर वह आए बगैर तो रहेगा नहीं। वह लिए बगैर छोड़ेगा क्या? इसलिए प्रतिकूलता में कहना कि, 'ले जाओ, ले जाओ!' अपना दादाई बैंक है न!

दूषमकाल में जो सब लोग हमें मिलते हैं, उनमें से अधिकतर दुःख देने के लिए ही होते हैं, थोड़े-बहुत हमें सुख देने के लिए भी होते हैं। पाप के उदय के फल स्वरूप दुःख देने के लिए मिलता है, लेकिन वह अच्छा है। क्योंकि मुक्त होने का रास्ता जल्दी मिल गया न!

ज्ञानी के सानिध्य में प्रत्येक संयोग निकाली

प्रश्नकर्ता : एक बार ज्ञानी पुरुष के दर्शन हो जाने के बाद उदय लगभग अनुकूल ही आता है न?

दादाश्री : बहुत से उदय अनुकूल ही होते हैं लेकिन कोई हो न ज़रा परेशान करे ऐसा, तब किसी को वापस ऐसा एकाध विपरित, प्रतिकूल उदय भी आता है लेकिन फिर भी वहाँ *निकाल* हो जाता है। ज्ञानी पुरुष के मिलने के बाद *निकाल* हो सकता है। बाकी सबकुछ अनुकूल ही होता है। क्योंकि पाप धुलने के बाद ही ज्ञान प्रकट होता है। जो प्रतिकूल पाप थे न, वे धुल जाते हैं। जो ज्ञान को रोकते थे, जो जागृति को रोकते थे, वे जो प्रतिकूल पाप थे, वे धुल गए। फिर सब अनुकूल ही आता है। सबकुछ अनुकूल ही आता है न?

विपरित संयोगों में ज्ञान खिलता है

हमें भी संयोग मिलते हैं, लेकिन हम लोगों को कौन से संयोग पसंद करने चाहिए कि जो रियल में हेल्प करें वे। जो रियल का मार्गदर्शन दें उन संयोगों को पसंद करना चाहिए। जो रिलेटिव का मार्गदर्शन दें, उन संयोगों को पसंद नहीं करना चाहिए। जगत् के लोग संयोगों के दो भाग कर देते हैं - एक फायदे वाले और दूसरे नुकसान वाले, लेकिन हम तो जानते हैं कि फायदा-नुकसान वह किसकी सत्ता है? वह अपनी सत्ता नहीं है! आपको तो सत्संग मिले, वे संयोग पसंद करने योग्य! अन्य सभी संयोग, वे तो संयोग ही हैं। अरे, सब से बड़े तो रात-दिन साथ ही सोये रहने वाले संयोग, मन-वचन-काया के संयोग वे ही दुःखदायी हो गए हैं, तो फिर दूसरा कौन सा संयोग सुख देगा? आपको तो, ये संयोग छोड़ें ऐसे नहीं हैं, लेकिन वहाँ पर समभाव से *निकाल* करना है! इसमें कैसा है कि जितने विपरीत संयोग ज़्यादा हैं उतना यह ज्ञान अधिक खिलता जाए, ऐसा है!

ये संयोग जो आपको मिले, उन संयोगों को अनुकूल हो जाओगे तो वे संयोग आपको अनुकूल हो जाएँगे। संयोग आपको खुद को अनुकूल हो जाएँगे।

प्रश्नकर्ता : हाँ, हो ही जाएँगे हमें।

दादाश्री : आपको सिर्फ अनुकूल होने की

ज़रूरत है। फिर आप शौकीन बन जाओ, उसमें फिर वह शौक क्या करेगा?

प्रश्नकर्ता : वैसा प्रयत्न करना है संयोगों के अनुकूल होने का।

दादाश्री : वह प्रयत्न तो हमारा होना ही चाहिए न!

विज्ञान मिलने के बाद अनुकूलता में भी फीकापन

प्रश्नकर्ता : दादा, आप अपने विज्ञान में अंदर से रस सुखा देते हैं। अपने विज्ञान में अंदर का जो रस है, वह सारा सूख जाता है।

दादाश्री : नहीं! यह विज्ञान ही काम कर रहा है। वह रस तो नहीं सूखता लेकिन जैसे जलेबी खाने के बाद चाय पिए तो वह फीकी लगती है, वैसा। सूखता कुछ भी नहीं है लेकिन उसे फीका लगता है। संसार फीका लगता है।

प्रश्नकर्ता : संसार फीका लगता है। वर्ना इस तरह तो फीका लगेगा संसार?

दादाश्री : यानी अपने आप स्वाभाविक रूप से छूट जाता है। इच्छाएँ फीकी पड़ जाती हैं।

प्रश्नकर्ता : दादा, आपका विज्ञान मिलने के बाद तो संसार में सभी प्रकार की अनुकूलताएँ रहती हैं फिर भी वहाँ फीकापन लगता है।

दादाश्री : हाँ! फीकापन लगता है, फीकापन। सबकुछ अनुकूल हो फिर भी फीकापन लगता है।

प्रश्नकर्ता : चारों तरफ से अनुकूलता मिली हो फिर भी फीकापन लगता है।

दादाश्री : बल्कि बोझ लगता है। यह विज्ञान अलग ही तरह का है! इसीलिए अपूर्व कहलाता है न! पूर्व में सुना नहीं, पढ़ा नहीं, जाना नहीं, ऐसा है यह अपूर्व विज्ञान!

संयोगों के मात्र ज्ञाता-द्रष्टा

हर एक व्यक्ति को इतना तैयार हो जाना है कि कोई भी जगह उसे बोझ समान न लगे। जगह उससे परेशान हो जाए, लेकिन वह खुद परेशान नहीं हो, उस हद तक तैयार होना है, वर्ना जगहें तो अनंत हैं, अनंत क्षेत्र हैं, क्षेत्रों का अंत नहीं है।

वास्तव में संयोगों और शुद्धात्मा के सिवा दूसरा कुछ है ही नहीं। फिर संयोग भी दो प्रकार के हैं-प्रतिकूल और अनुकूल। इसमें, अनुकूल में कोई परेशानी नहीं आती, सिर्फ प्रतिकूल परेशान करते हैं। उतने ही संयोगों को हमें संभाल लेना है, और फिर संयोग वियोगी स्वभाव के हैं। इसलिए उसका समय होते ही चलता बनेगा। हम उसे 'बैठ-बैठ' कहें, फिर भी खड़ा नहीं रहता!

खराब संयोग अधिक नहीं रहते। लोग दु:खी क्यों हैं? क्योंकि खराब संयोगों को याद कर-करके दु:खी होते हैं। वह गया, अब किसलिए रोना-धोना मचाया है? जले उस समय रोए तो बात अलग है, पर अब तो तेरे ठीक होने की तैयारी हुई है, फिर भी शोर मचाता है कि देखो, 'मैं जल गया, मैं जल गया'।

कुछ लोगों को दिन अनुकूल आता है और रात अनुकूल नहीं आती, लेकिन ये दोनों संयोग रिलेटिव हैं। रात है तो दिन की कीमत है और दिन है तो रात की कीमत है।

वीतराग भगवान क्या कहते हैं कि, 'ये सभी संयोग ही हैं, और दूसरा, आत्मा है, उसके सिवा तीसरा कुछ भी नहीं है।' उनके लिए सही-गलत, अच्छा-बुरा कुछ भी नहीं होता। 'व्यवस्थित' क्या कहता है कि, 'इन संयोगों में तो किसी का किंचित्मात्र भी नहीं चल सकता, सारा ही पिछले खाते का हिसाब मात्र है।' वीतरागों ने क्या कहा है कि सारे संयोग एक समान ही हैं। देने आया

या लेने आया, सभी एक ही हैं, लेकिन यहाँ पर बुद्धि दखल करती है। संयोगों के मात्र ज्ञाता-द्रष्टा ही रहने जैसा है। ये संयोग तो फिर वियोगी स्वभाव वाले हैं। इकट्ठे होने के संयोग खत्म हो जाने पर बिखरता है, तब जो एक मन (40 सेर) का था, वह फिर 38 सेर का हो जाता है, फिर 36 सेर का हो जाता है, फिर क्रमशः वह खत्म हो जाता है।

संयोग कम्प्लीट वियोगी स्वभाव के हैं। वह तो एक संयोग आता है और ग्यारह बजकर पाँच मिनट हो जाएँ, तब जाने लगता है। उसे कहें कि, 'ले, खड़ा रह, भोजन करके जा।' फिर भी वह खड़ा नहीं रहता। जब उसका काल पके तब जाने ही लगता है। लेकिन यह तो कैसा है कि दो मिनट के बाद वापस वियोग होने वाला हो, तब वह राह देखता है कि 'अभी तक नहीं गया, अभी तक नहीं गया, कब जाएगा?' वे दो मिनट उसे दस मिनट जैसे लगते हैं। ऐसा इंतजार करने से तो काल लंबा लगता है। बाकी, संयोग तो वियोगी स्वभाव वाले ही हैं।

हर एक संयोग में हमें खुद को एकाकार होने जैसा नहीं है, उसके तो सिर्फ ज्ञाता-द्रष्टा मात्र हैं। संयोगों के साथ हमें झगड़ा करने की भी ज़रूरत नहीं है या फिर उनके साथ बैठे रहने की भी ज़रूरत नहीं है। कोई भी संयोग आए तो कह देना चाहिए कि, 'गो टु दादा।' हर एक संयोग तो निरंतर बदलते ही रहेंगे और आप उनसे भिन्न हैं। विचार आया, वह संयोग और उसमें एकाकार होकर हिल जाएँ, वह भ्रांति है, उसे तो मात्र देखना और जानना चाहिए।

संयोगों को एडजस्ट हो जाओ

हर एक व्यक्ति के जीवन में कुछ प्रिन्सिपल (सिद्धांत) तो होने ही चाहिए। फिर भी संयोगानुसार बरतना चाहिए। जो संयोगों के साथ एडजस्ट हो जाए, वही मनुष्य कहलाता है। यदि हर एक संयोग में एडजस्टमेन्ट लेना आ जाए तो अंततः मोक्ष में पहुँचा जा सके, ऐसा ग़ज़ब का हथियार है।

'व्यवस्थित' को अगर पूरी तरह से समझते हों तो 'आग्रह' नामक शब्द रहेगा ही नहीं। सामने वाले से कहना कि, 'आपको जैसा अनुकूल हो वैसा कीजिए।' आप अनुकूल हो जाना। 'व्यवस्थित' से बाहर कुछ भी नहीं होगा।

जगत् के लोग 'व्यवस्थित है' ऐसा नहीं समझते, लेकिन 'जो हुआ सो ठीक है', कहते हैं। लेकिन हमें 'व्यवस्थित' को समझ लेना है। अब 'लोग' ज़्यादा से ज़्यादा चार बाबतों में 'व्यवस्थित' समझे होते हैं लेकिन फिर उनका अपमान होने पर हिल जाते हैं लेकिन फिर तुरंत ही 'व्यवस्थित' समझ में आ जाए तो स्थिरता रहती है। यह तो ऐसा है न, कितनी सारी बाबतें रह गई होती हैं। अगर कोई 'व्यवस्थित' समझा हो न, तो उसे राग-द्वेष होंगे ही नहीं। समझा हुआ तो तब कहलाता है कि जब 'व्यवस्थित' एक्ज़ेक्ट (जैसा है वैसा) समझे।

आपको 'व्यवस्थित' समझ में आया है? अपमान की जगह पर जाना पड़े तो आपको क्या होता है? अपमान होने के साथ ही 'व्यवस्थित है' कहकर पता लगाना है कि, 'यह गोली लगी कैसे? आई कहाँ से? मारने वाला कौन? क्या हुआ? किसे लगी? हम कौन?' जब तक 'व्यवस्थित' समझ में नहीं आता तब तक ऐसा ही समझता है कि, 'इसने मारी है मुझे, मैंने खुद देखा है न!' अर्थात् यह 'व्यवस्थित' यदि समझ गया होता न, तो वीतराग हो जाता!

'व्यवस्थित' नदी है और हम नाव। अब नाव नदी से कहती है कि, 'तू टेढ़ी-मेढ़ी मत चलना।' तब नदी नाव से कहती है, 'अरे! तू टेढ़ी-मेढ़ी मत चलना। तुझे यदि जीवित रहना है तो जैसा मैं करूँ, वैसा करना। जैसे मैं चलूँ, वैसे चलना। मुझे अनुकूल हो जाना, वर्ना तेरे टूटकर टुकड़े-टुकड़े हो जाएँगे, मर जाएगी!'

अनुकूल में मूर्च्छित, प्रतिकूलता में प्रगति

संयोग तो सारे बदलते रहेंगे। वे खुद 'एडजस्ट' नहीं होंगे, आपको 'एडजस्ट' होना पड़ेगा। संयोगों में भाव नहीं है और हम में भाव हैं। संयोगों को अनुकूल करना वह अपना काम। प्रतिकूल संयोग भी अनुकूल ही हैं। सीढ़ियाँ चढ़ते समय हाँफते हैं, लेकिन क्यों चढ़ते हैं? ऊपर जा पाएँगे, ऊपर का लाभ मिलेगा, यह भाव रहता है!

अनुकूल और प्रतिकूल सभी कुछ बाह्य भाग का ही है। बाहर का जो भाग है न, वही बरतता है, आत्मा नहीं बरतता। जब प्रतिकूल हो तब बाह्य भाग एब्सेन्ट हो जाता है, तब आत्मा हाज़िर हो जाता है। अनुकूलता में बाह्य भाग प्रेज़न्ट रहता ही है। इसलिए हमें यदि आत्मा को प्रेज़न्ट रखना हो तो उसके लिए प्रतिकूलता अच्छी है और देह को प्रेज़न्ट रखना हो तो अनुकूलता अच्छी है।

जो हमें प्रतिकूल लगता है न, उससे आत्मशक्ति बहुत बढ़ जाती है। प्रतिकूल लगे, उसके बावजूद भी प्रतिकूल के साथ रह पाए तो आत्मशक्ति बहुत बढ़ती है। लेकिन संसार के लोग तो तुरंत ही उसे छुट्टी दे देते हैं। उन्हें अनुकूल नहीं आया तो अगले दिन विनती करके छुट्टी दे देते हैं। जबकि यहाँ ऐसा नहीं होता।

अनुकूलता से तो पूरा जगत् भटका हैं। हमें यदि आत्मा होना हो तो प्रतिकूलता लाभदायक है और आत्मा नहीं होना हो तो अनुकूलता लाभदायक है। जागृति के मार्ग पर चले तो प्रतिकूलता फायदेमंद है और मूर्च्छा के मार्ग पर अनुकूलता फायदेमंद है।

अनुकूल व प्रतिकूल दोनों के प्रति समान भाव

अब हम आत्मा ही हो गए हैं। इसलिए सभी जगह जहाँ देखते हैं वहाँ अनुकूल आ गया। नहीं?

प्रश्नकर्ता : हाँ, सभी जगह।

दादाश्री : यह मिला तब भी अनुकूल। यह नहीं मिला, वह मिला तब भी अनुकूल। अत: अनुकूल-प्रतिकूल समान हो गया। समान भाव! धन्य है, आपके ज्ञान को भी धन्य है कि अनुकूल व प्रतिकूल समान हो गया! हमें तो अंतिम बात पकड़नी है। अनुकूल और प्रतिकूल दोनों को एक ही कर दो।

जय सच्चिदानंद

जूनागढ त्रिमंदिर प्राणप्रतिष्ठा महोत्सव

आत्मज्ञानी पूज्यश्री दीपकभाई के सांनिध्य में...

7 जनवरी (शुक्र) शाम 4-30 से 7-30 - **सत्संग** (स्थानिक महात्माओं और नए मुमुक्षुओं के लिए)

8 जनवरी (शनि) शाम 4 से 7-30 - **ज्ञानविधि** (स्थानिक महात्माओं और नए मुमुक्षुओं के लिए)

9 जनवरी (रवि) **प्राणप्रतिष्ठा :** सुबह 9-30 से 1, **प्रक्षाल-पूजन-आरती :** शाम 4 से 7

स्थल : दादा भगवान त्रिमंदिर, खामध्रोल चोकडी, जूनागढ बाइपास रोड, जूनागढ. **संपर्क :** 9924344489

विशेष सूचना : प्राणप्रतिष्ठा कार्यक्रम केवल एक दिन का है, इसलिए ठहरने की व्यवस्था नहीं की गई है।

जो महात्मा-मुमुक्षु उसी दिन सीधे ही महोत्सव स्थल पर पहुँचेंगे, उनके लिए बाथरूम-टोइलेट की सुविधा स्थल पर रहेगी।

त्रिमंदिरो के संपर्क : अडालज : 9328661166-77, **राजकोट :** 9924343478, **भूज :** 9924345588, **मुंबई :** 9323528901, **अंजार :** 9924346622, **मोरबी :** 9924341188, **सुरेन्द्रनगर :** 9737048322, **अमरेली :** 9924344460, **वडोदरा :** 9574001557, **गोधरा :** 9723707738, **जामनगर :** 9924343687. **अन्य सेन्टरों के संपर्क : अहमदाबाद (दादा दर्शन) :** (079) 27540408, **वडोदरा (दादा मंदिर) :** 9924343335, **दिल्ली :** 9810098564, **बैंगलूर :** 9590979099, **कोलकता :** 9830080820 **यु.एस.ए.-केनेडा:** +1 877-505-3232, **यु.के.:** +44 330-111-3232, **ऑस्ट्रेलिया:** +61 402179706

त्रिमंदिर में दीपावली के अवसर पर रोशनी

दीपावली के अवसर पर विशेष भक्ति

कैलेन्डर 2022 का विमोचन

अन्नकूट

प्रसाद अर्पण

सीमंधर सिटी - ATPL में महात्माओं को दर्शन देते हुए पूज्यश्री

दिसम्बर 2021
वर्ष-17 अंक-2
अखंड क्रमांक - 194

दादावाणी

Date Of Publication On 15th Of Every Month
RNI No. GUJHIN/2005/17258
Reg. No. G-GNR-348/2021-2023
Valid up to 31-12-2023
LPWP Licence No. PMG/NG/036/2021-2023
Valid up to 31-12-2023
Posted at Adalaj Post Office
on 15th of every month.

अनुकूल व प्रतिकूल दोनों के प्रति समान भाव

अनुकूलता से तो पूरा जगत् भटका हैं। अब हम आत्मा ही हो गए हैं। इसलिए सभी जगह जहाँ देखते हैं वहाँ अनुकूल आ गया। नहीं? यह मिला तब भी अनुकूल। यह नहीं मिला, वह मिला तब भी अनुकूल। अत: अनुकूल-प्रतिकूल समान हो गया। समान भाव! धन्य है, आपके ज्ञान को कि अनुकूल व प्रतिकूल समान हो गया! हमें तो अंतिम बात पकड़नी है। अनुकूल और प्रतिकूल दोनों को एक ही कर दो।

- दादाश्री

Printed and Published by Dimple Mehta on behalf of Mahavideh Foundation - Owner. Printed at Amba Offset, B - 99, GIDC, Sector - 25, Gandhinagar - 382025.